स्वास्थ्य संयम

खण्ड 1

1. (a) स्वास्थ्य संयमः परिचय

* स्वास्थ्य / संयम — से तात्पर्य
* संयम से स्वास्थ्य
  में — शरीर में
  सह-अस्तित्व, परस्पर पूरकता
* आवश्यकता
* स्वस्थ मानव की पहचान

1. (b) शरीर रचना व क्रिया का सामान्य परिचय

– दोषधातु मल मूलं हि शरीरम
↓
– शरीर में चलने वाली क्रियाएं–
पाचन, श्वसन, मल-मूत्र निष्कासन आदि
– **दोष प्रकृतियां**
– इन कार्यों के क्रियान्वन हेतु शरीर के अंग अवयवों की रचना होना
– विभिन्न संस्थानों का परिचय
– स्त्री-पुरुष शरीर तथा बाल युवा वृद्धावस्था में अवस्था सहज, पूरकता के अर्थ में भिन्नता।

1. (c) स्वास्थ्य रक्षण व चिकित्सा हेतु प्रयुक्त वस्तुओं का परिचय

– पदार्थावस्था	मानव शरीर, प्रणावस्था की इकाई
– प्राणावस्था	इन सभी अवस्थाओं की मानव से
– जीवावस्था	परस्पर पूरकता

* द्रव्यों का परिचय– रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव
  (कतिपय महत्वपूर्ण द्रव्यों का)
* औषधि निर्माण (पंचविणि कषाय कल्पना)

खण्ड 2

2. स्वास्थ्य संरक्षण

जो प्रयोग कर रहे हैं, उसे सही-सही समझ कर करें

2. (a) आहार में (आहार चिकित्सा)

* हर दिन प्रयोग करने योग्य श्रेष्ठ वस्तुएं
  वायु, अनाज, द्विदल, शाक-सब्जी, फल, दुग्ध, दुग्ध विकार, मसालों आदि का विस्तृत वर्णन
  सदुपयोगिता
* आहार के नियम
* हर आयु व ऋतु के अनुसार आवयश्यक आहार परिवर्तन
* स्व प्रकृति के अनुकूल आहार
* व्यवसाय सहज आहार-विहार

2. (b) विहार में

* दिनचर्या रात्रिचर्या
* ऋतुचर्या
* वास्तु शास्त्र का महत्व

2. (c) निरंतर अध्ययन का महत्व

स्वयं की समझ कर, अपने स्वास्थ्य की जिम्मेदारी लेता हूं

3. रोग– कारण, परीक्षा व सामान्य उपचार

3. (a) रोग

* रोग
* कारण

3. (b) रोग परीक्षा

* रोग के भेद

रोग	साधारण	आदि
	असाध्य	

* रोग परीक्षा
* आतुर परीक्षा

3. (c) सामान्य उपचार

(i) **प्राकृतिक चिकित्सा**
  पंचमहाभूत का प्रयोग
  आहार-विहार परिर्वतन
  मालिश आदि उपाय
(ii) यज्ञोपैथी
(iii) Accupressure Su-jok, Acupuncture आदि उपचार
(iv) योग अभ्यास
(v) सामान्य मासालों का प्रयोग
(vi) औषधीय द्रव्यों का प्रयोग
(vii) पंचकर्म

3. (d) कुछ विशिष्ट स्थितियों में उपचार

(i) प्राथमिक उपचार (Emergency medicine)
(ii) विष चिकित्सा

(iii) स्त्री शरीर की विशेष अवस्थाओं में अतिरिक्त देखभाल–
  कामार्यावस्था
  गर्भावस्था
  प्रसूता
  वृद्धावस्था
(iv) बाल रोग व चिकित्सा।

समग्र स्वास्थ्य

स्वास्थ्य, संयम कार्यक्रम की आवश्यकता, मानव को अस्तित्व की व्यवस्था समझकर तदानुसार जीने में सहायता करने के प्रयोजन से है। न कि भोग, अतिभोग बहुभोग व युद्ध के लिए शरीर सुदृढ़ बनाने के लिए।

मानव यदि व्यवस्था में जीता है, तो मानव लक्ष्य प्रमाणित होते हैं–

1. समाधान (स्वयं में) 2. समृद्धि (परिवार में)
3. अभय (समाज में) 4. सह-अस्तित्व (अस्तित्व में)

समग्र वयवस्था ही स्वस्थ मानव इन लक्ष्यों को प्रमाणित करता है मानव की यथास्थिति है। समग्र स्वास्थ्य अर्थात् अस्तित्व की व्यवस्था को समझकर तदानुसार जीना ही स्तर पर। मानव संस्कारनुपति है, इसलिए वह यथास्थिति, ज्ञान द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। जीवन में जाने जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में घटित होता है।

स्वस्थ मानव परंपरा स्थापित निम्न विधि से हो सकती है–

– मानव दूसरे मानवों के साथ परस्पर पूरक विधि से जीकर न्याय प्रमाणित करे।
– मानव, मनवेतर प्रकृति (पदार्थोवस्था, प्रणावस्था जीवावस्था) के साथ भी परस्पार पूरक विधि से जीकर स्वयं व शेष प्रवृति को समृद्ध करे। समग्र स्वाथ्य का ज्ञान व परंपरा तभी हो सकती है, जबकि मानव को पूरे अस्तित्व भौतिक, रसायनिक वस्तु, जीवन के रूप में सभी इकाईयों का व्यापक अनुभव हो। स्वास्थ्य व व्यवस्था अभिन्न है। स्वस्थ मानव ही स्वस्थ व्यवस्था को प्रमाणित करने में समर्थ होने हैं क्योंकि स्वस्थ मानव का आचरण निश्चित हो जाता है। स्वस्थ मानव न्याय, धर्म, सत्य को प्रमाणित करते हैं। स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम की परंपरा बनाने हेतु यह आवश्यक है कि परिवार का संरक्षक सदस्य परिवार के सभी सदस्यों के स्वास्थ्य को बनाए रखने की जिम्मेदारी ले जब तक दूसरे सदस्यों को किसी अक्षमता के कारण स्वस्थ रहने का ज्ञान-विज्ञान के अभाव में आयुसीमा (अतिबाल/अतिवृद्ध) के कारण किसी प्रकार के रोग से ग्रस्त हाने के कारण सहयोग की आवश्यकता हो। तत्पश्चात

तो परिवार के सभी सदस्यों को स्वयं के परिवार के तथा समाज के अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य लाभ हेतु कार्यक्रम में भागीदारी अपनी योग्यतानुसार करनी ही चाहिए। स्वस्थ मानव के जीवन का लक्ष्य (सुख शांति संतोष आनंद) को ठीक-2 देख पाता है तथा उसे प्रमाणित करता है।

चिकित्सा विज्ञान की संपूर्णता तभी है जब हम सर्वप्रथम स्वस्थ मानव के शरीर की अवस्था, स्थिति, नाड़ी की सटीक पहचान करें। ततृपश्चात, हमें विभिन्न रोगों की पहचान हो सकती है नाड़ी द्वारा तथा उससे संबंधित लक्षणों के द्वारा चिकित्सा विज्ञान की संपूर्णता में (Medical ability) निम्न तथ्य हैं–

1. रोग की पहचान 2. रोग के बलाबल की पहचान 3. औषधि की पहचान 4. औषधि के सही प्रकार से संयोग 5. उचित अनुपात की पहचान 6. रोगी के बलाबल, मानसिकता, नियम-संयम पथ्यापथ्य के अनुसरण की क्षमता से ज्ञान।

अंत में इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सम्यक् चिकित्सा का चयन करना।

चिकित्सा व रोगी के बीच में प्रधान, मूल्य विश्वास है। चिकित्सक जब स्वयं स्वस्थ मानव होता है, तो वह बिना किसी प्रकार के लाभ का ज्ञान होने में मदद करते हुए जो भी चिकित्सा पद्धति उसके शरीर के रोग को ठीक करने हेतु सर्वोत्तम रहेगी, उससे उस रोग का उपचार करने में सहायक होता है।

चिकित्सक जब स्वयं की अपने खुद के परिवार समाज, व्यापक के साथ व्यवस्था अर्थात् संपूर्ण अस्तित्व को समझकर तथा इन सभी स्तरों पर अपनी भागीदारी को समझकर चिकित्सा करता है। तभी वह समग्रता में चिकित्सा कर पाने में समर्थ होता है।

स्वथ मानव परंपरा स्वस्थ धरती पर ही बन सकती है। धरती तभी स्वस्थ हो सकती है, जब कि जाग्रत मानव मनुष्येत्तर प्रकृति की सभी अवस्थाओं के साथ परस्पर पूरकता को समझ कर तदनुसार निर्वाह करें।

आज धरती मानव की नासमझी के कारण बीमार हो गई है इसके सुधार के लिए निम्न कार्यक्रम तत्काल किए जाने चाहिए–

– जंगलों के वृक्षों का सही तरीके से प्रयोग अत्यधिक नाश रोकना तथा जितना प्रयोग करें उससे अधिक नए वृक्ष लगाना।
– उर्जा के लिए नदियों के बहाव, हवा के बहाव, सौर ऊर्जा, गोबर गैस आदि recoverable sources of energy का प्रयोग बढ़ाना तथा धरती के अंदर से कोयला mineral oils का खनन रोकना।

इससे प्रदूषण की समस्या तो समाप्त होगी ही साथ ही शुद्ध वायु, जल, आकाश, पृथ्वी ही कर पोषक, स्वास्थ्यवर्धक अनाज की प्राप्ति होने से मानव का स्वास्थ्य बना रह पायेगा। ऋतु संतुलन बना रहेगा जिससे कम या ज्यादा गर्मी, सर्दी वृष्टि होने से उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होंगे।

असंख्य प्रकार के रोगों के पुख्यतः 4 कारण हैं–

प्रदूषण, भ्रष्टाचार, मिलावट, तनाव और इनसे मुक्ति का मार्ग एक ही है "समाधान"। जीवन की जागृति के बाद रोगों की जांच-परख व चिकित्सा भी अत्यंत सरल हो जाती है।

संयमपूर्वक स्वाथ्य बना रहता है तथा यदि किसी कारणवश रोग हो भी जाए तो जाग्रत मानव उसके उपचार की विधि जानता है। स्वस्थ मानव अर्थात् समाधित मानव, न्यायपूर्ण मानव, संतुलित मानव यह सब स्वस्थ मानव का वैभव है।

1. स्वास्थ्य-संयम : एक परिचय

स्वास्थ्य-संयम का भावार्थ–

मानव, ज्ञानवस्था की इकाई है। जीवन (चैतन्य इकाई) व शरीर (जड़ इकाई) का सह-अस्तित्व (संयुक्त रूप) है और दोनों इकाईयों में परस्पर पूरकता है। जीवन शरीर को चलाता है। जीवन के बिना अकेले (मृत शरीर) के लिए कोई स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम की व्यवस्था नहीं हो सकती।

स्वास्थ्य– शरीर में प्रमाणित होता है। शरीर का स्वास्थ्य तभी सुनिश्चित किया जा सकता है, जबकि जीवन में संयम प्रमाणित हो।

शरीर जीवन की अभिव्यक्ति के लिए जीवन जागृति के लिए तथा प्रकृति के साथ कार्य हेतु जीवन का एक अनिवार्य साधन है। शरीर की उपयोगिता तभी ही है जब कोई जीवन उसे अपनी जागृति के साधन के रूप में स्वीकारे। शरीर स्वयं में व्यवस्था है। इसलिए शरीर की व्यवस्था समझ में आती है ता मानव उसे स्वस्थ बनाए रखते है। शरीर का स्वस्थ बने रहना सहज है।

मानव शरीर अपने आप में एक व्यवस्थित इकाई है जिसकी व्यवस्था संयम से सुनिश्चित होती है। मानव शरीर अनेक अंग-अवयवों का समुच्चय है। स्वस्थ शरीर में इन सभी अंग अवयवों में परस्पर सामंजस्य बना रहता है। तथा शरीर, जीवन की आवश्यकता तथा इच्छा अनुसार कार्य करने में समर्थ होता है। हाने अवयव, शरीर के दूसरे अवयव के परस्पर पूरके होते है। एक अवयव के लिए आवश्यक पोषक तत्व, दूसरे अवयव में उपलब्ध रहता है। कोई रोग होता है तो बाकी सारे अवयव प्रभावित होते हैं।

स्वस्थ मानव के लक्षण बताते हुए कहा गया है–

"समदोषः सम अग्निश्च समधातु मलः क्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्दियमनाः स्वस्थ इत्यभिः धीयते।।"

मानव शरीर के तीन मूल आधार स्तंभ हैं–

त्रिदोष (वात, पित्त, कफ)
सप्तधातु (रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्ज वक्र
त्रिमल (पुरीष, मूत्र, स्वेप)

इन सभी की क्रिया सुचारू रूप से चले, शरीर की अग्नि समावस्था में रहे जिससे क्षुणा सही समय में लगे तथा भुक्ताहार।

संयम

'संयम' अर्थात् 'जागृति'।

स्वास्थ्य अर्थात जीवन शरीर द्वारा स्वयं को प्रकाशित करने तथा संवाद करने में सक्षम है (Health means body is capable to express, communicate and reflect) ivan's awakening. 'संयम' अर्थात् जाग्रत मानव जिनकी संवेदनाएं, संज्ञानशीलता से नियंत्रित है। 'संवेदना' अर्थात् शरीर की पंच ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, श्रेपत, नासिका, जिहवा, त्वचा) द्वारा जीवन, शरीर के लिए अनुकूल वस्तुओं, वातावरण का चयन करता है। यह शरीर को बनाए रखने के क्रम में संवेदनाओं का सदुपयोग है।

जब ज्ञान के अभाव में जीवन, शरीर की संवेदनाओं द्वारा सुखी होने के प्रयास में इंद्रियों द्वारा अवांछनीय तत्वों का तथा अतिमात्रा में भोग अतिभोग बहुभोग में लग जाता है, तो सुख तो मिलता ही नहीं। साथ ही, अति उपयोग के कारण शरीर भी समय से पहले ही जीर्ण-शीर्ण होकर कई रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

संज्ञानशीलता अर्थात् संबंधों का ज्ञान 'संयम' अर्थात् शरीर की संवेदनाएं, संज्ञानशीलता द्वारा नियंत्रण में है तभी स्वास्थ्य संभव है अन्यथा नहीं। यह व्यवस्था का मुख्य आधार है।

संयम निरंतर व न्यायपूर्ण होता है। संयम का आधार नियम, नियंत्रण, संतुलन होता है।

'संयम–जीवन, आने साधन रूपी शरीर के पोषण (आहार, जल, वायु) संरक्षण (मकान, वस्त्र) तथा सदुपयोग (ऐसी सुविधाएं जो मानव के कार्य करने की क्षमता बढ़ाएं) की जिम्मेदारी लेता है।

उस रोगी अवयव के स्वास्थ्य के लिए प्रयास में लग जाते है। शरीर के समस्त अवयवों के मध्य व्यवस्था बनाए रखने हेतु निरंतर

1. समयक् आहार-विहार
2. आसन प्राणायाम नियमित रूप से करें।
3. यदि कोई रोग हो जाए तो सटीक चिकित्सा विधि से चिकित्सा करें समय से पच जाए यह स्वस्थ शरीर की पहचान है।

इसके साथ-साथ, आत्मा- इन्द्रियां व मन प्रसन्न हो यह जाग्रत जीवन के लक्षण हैं।

ऐसा मानव ही पूर्ण स्वस्थ कहा जाएगा। स्वस्थ मानव ही स्वस्थ मानव परंपरा का सूत्रधार होगा। यही स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम का प्रयोजन है।

स्वस्थ मानव समाज में निम्न कार्यक्रमों में भाग लेकर स्वयं को प्रमाणित करेगा–

1. शिक्षा-संस्कार	इन सभी पांचों आयामों में भागीदारी करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना है।
2. न्याय-सुरक्षा	
3. उत्पादन कार्य	
4. विनिमय	
5. स्वास्थ्य-संयम	

मानवीय शिक्षा संस्कार के अंतर्गत स्वास्थ्य संयम व अन्य सभी कार्यक्रम समाहित ही हैं। स्वास्थ्य संयम कार्यक्रम के मानवीय शिक्षा संस्कार द्वारा परिवार के हरेक सदस्य को ज्ञान होना आवश्यक है ताकि स्वास्थ्य के विषय में निर्भरता न रहे बल्कि आगे के व्यापक स्तरों पर स्वास्थ्य संयम में भागीदारी हो।

1. (b) शरीर रचना व क्रिया का सामान्य परिचय

शरीर क्रिया

क्रियात्मक दृष्टि से शरीर के समस्त क्रिया-कलापों का संचालन दोष, धातु तथा मल द्वारा होता है। इन तीनों को शरीर का 'त्रयस्तंभ' कहा गया है। यह सभी मिलकर शरीर को धारण करते हैं तथा अपने-2 कार्यों की प्रधानता के कारण इनके भिन्न-2 नामकरण किया गया है।

दोष

दोष के तत्व हैं जिनमें शरीर को दूषित करने की क्षमता हो। यह शरीर के प्रमुख कार्यकारी तत्व होते हैं। शरीर दोष तीन हैं– वात, पित्त व कफ इनमें भी वात, शेष दोनों दोषों के कार्यों में सहायक होता है।

वात– वह तत्व जिसका शरीर में कार्य प्रधान रूप से 'संचार' का है, उसे 'वात' कहा गया है। शरीर में होने वाली सभी गतियां कार्य करने की प्रवृति श्वसन क्रिया धातुओं तथा मलों की क्रमशः शरीर में सम्यक् गति तथा सम्यक् प्रकार से शरीर से मोक्षण इंद्रियों के विषय ग्रहण में कारण अग्नि कर्म को भी प्रेरणा वात ही देता है यह वात सर्व शरीर व्यापी है, किंतु इसका कार्यक्षेत्र विशेष रूप से पक्वाशय, कटि, जंघा, पाद व अस्थियां हैं।

वात के गुण (अर्थात् दूसरी इकाई के साथ परस्परता में प्रभाव) रूक्षता, शीतता, लधुतता, सूक्ष्मता, चलता, विशदूता व खरता के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

पित्त– वह तत्व, जो शरीर में ताप पैदा करता है तथा सभी प्रकार के पाचन कार्यो का कर्त्ता है, उसे 'पित्त' कहा गया है।

प्रधान कार्य हैं–

1. शरीर की स्वाभाविक उष्मा बनाये रखना
2. मुक्ताहार का पाचन
3. क्षुधा तृषा उत्पन्न करना
4. नेत्रों में दर्शन की क्षमता
5. शरीर में कांति व मृदुता बनाए रखना

प्रधान कार्यक्षेत्र हैं–

पक्वाशय व अभाशय का मध्य स्थान, स्वेद लसिका, रस व रक्त हैं।

गुण– स्निगध, उष्ण, तीक्ष्ण द्रव, सर, लघु

कफ– ऐसा तत्व जो शरीर की विभिन्न रचनाओं के निर्माण में सहायक हो तथा शरीर बल का कारण हो, उसे कफ कहा गया।

कफ मुख्यतः शरीर में स्निग्धता, स्थिरत्व, गौरव व बल उत्पन्न करता है।

प्रमुख स्थान– आमाशय, वक्ष, शिर, ग्रीवा, संधि पर्व व मेद धातु हैं।

गुण– गुरू, शीत, मृदु, स्निगध, स्थिर व मंद।

शरीर की विभिन्न क्रियाएं–

यह त्रिदो सर्वशरीर व्यापी होते हैं, किंतु शरीर के अलग-अलग स्थानों में आवश्यकतानुसार भिन्न-2 कार्यों में संलग्न होते हैं। इस हेतु समझने की

दृष्टि से स्थान-स्थान पर इनके अलग-2 नामकरण हैं। यह दोष मिल कर शरीर को बनाए रखने की दृष्टि से जिस प्रकार शरीर क्रियाओं का संचालन करते हैं तथा इन दोषों के तदानुरूप कार्यकारी प्रभेद निम्न हैं–

मस्तिषक व ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया

तर्थक कफ– मस्तिष्क तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियों की कोशिकाओं का निर्माण, पोषण तथा स्नेहन करता है।

बोधक कफ– जिह्वा मूल व कंठ में रहकार मुख में अपनी जलीय क्रिया द्वारा द्रव्यों को विलेय कर जिह्वा में उपस्थित तंत्रिका तंतुओं को उद्दीपन करने में प्रवृत्त करता है।

साधक पित्त हृदय अर्थात् शरीर का केंद्र मस्तिपक में रहते हुए समस्त मानसिक क्रियाकलापों जैसे मेधा, प्रसाद स्मृति आदि के संपादन में सहायक होता है।

आलोचक पित्त नेत्रों में रहकर रूप ग्रहण करने में सहायक होता है।

प्राण वायु का स्थान समस्त उर्ध्वजत्रुगत अवयव हैं। यह सभी इंद्रियों को उनके अनेक विषयों में प्रवृत्त करता है, श्वसन, आहार निगलना, उद्‌गार, क्षवधु आदि कर्मों का कर्त्ता है।

उदान वायु नाभि, उर व कंठ प्रदेश में संचार करते हुण वाणी की प्रवृत्ति, ऊर्जा, बल, वर्ण उत्पन्न करने का कार्य करता है।

शरीर में आहार पाचन का कार्य–

क्लेपक कफ आमाशय व आंत्र में रहता हुआ ग्रहण किए हुए आहार का क्लेदन कर, उसे मृदु बनाते हुए, उसके संधात को नष्ट करके उसके पाचन को सुगम बनाता है।

पाचक पित्त आहार पर क्रिया करके सार व किट्ट भाग को पृथक करके सार भाग के शरीर में अवशोषण में सहायक होता है। समान वायु, स्वेदवह, अंबुवह व दोषवह स्रोतसों में आश्रित तथा कोष्ठ में विचरता हुआ गाठराग्नि को सहायता प्रदान करता है।

शरीर में संचार–

यह कार्य प्रधानतः वात का है। इनमें, **व्यान वायु** संपूर्ण शरीर में गति करता हुआ शरीर की गति, आकुंचन प्रसारण उत्मेव निमेष, रक्त संचरण

स्वेद निर्माण व निष्कासन का कार्य करता है। अपान वायु, नाभि के नीचे के अवयवों में रहता हुआ उचित समय पर वायु, मूत्र, पुरीष, आर्त्तव में गर्भ को शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त

पित्त दोष का कार्य भिन्न-2 रूप तथा निर्माण है। भ्राजक पित्त, त्वचा में रहकर शरीर के प्रावृत ताप, प्रभा व वर्ण प्रकाशित करता है।

रंजक पित्त यवृत व प्लीहा में रहते हुए विशिष्ट रसायनिक क्रियाओं द्वारा सर में किंचित अंश को रक्त में परिवर्तित करता है।

कफ, दोष शरीर के निर्माण में तथा शरीर के स्वाभाविक बल को बनाए रखने में सहयोगी है।

अवलंलक कफ उर में स्थित रहकर त्रिक को धारण करता है तथा अन्न रस की सहायता से हृदय को भी बल देता है।

श्लेषक कफ सभी चल संधियों को दृढ़क्रता से मिलाए रखता है तथा आवश्यक स्निग्धता, पिच्छिलता व लक्ष्णता प्रदान करता है।

धातु

धातु शरीर के उस तत्वों को कहते हैं, जो शरीर को प्रधान रूप से धारण किए होते हैं। ग्रहण किए हुए आहार पर जाठराग्नि की क्रिया के फलस्वरूप सप्तधातुएं उत्पन्न होती हैं जिन्हें निम्नानुसार समझा जा सकता है–

धातु	स्थान	गुण	कर्म		उपधातु
रस	प्रधानतः हृदय, से 10 उर्ध्व, 10 अधो व 4 तिर्यक् इन 24 रस वह धमनियों द्वारा सर्वशरीर में संचरण।	द्रव, स्निध गतिशील	शरीर की सभी धातुओ का तर्पण रक्त धातु की पुष्टि	स्तन्य आर्त्तव	रस धातु की गुणवत्ता किसी भी मानव में उसकी त्वचा की स्निग्धता, श्लक्षणता, मृदुता, सूक्ष्मता तथा प्रभा से आंका जा सकता है।
रक्त	सर्व शरीर	गुंजाफल के सदृश वर्ण, द्रव, लघु, विज्रगंधि	शरीर के वर्ण का प्रकाशक मांस धातु		रक्त धातु की सारता वाले पुरुष से नख, नेत्र, तालु, ओष्ठ, हाथ व पैर की पुष्टि की वर्ण रक्त, स्निग्ध, शोभा युक्त होते है। वे मेधस्वी, सुकुमार होते हैं
मांस	मांस, शरीर की प्रथम धन धातु है, जो सर्वशरीर को आवृत्त किए हुए है।	शरीर के भिन्न-2 स्थानों में कार्य के अनुसार वायु द्वारा मांसपेशी के रूप में विभक्त आकार स्थूल-सूक्ष्म द्रव्य-दीर्घ आदि।	मांसपेशियां सिरा स्नायु, अस्थिपर्व व संधियों को आकृत किए हुए उन्हें बल व आधार प्रदान करती है। मेदधातु को पुष्ट करती है।	वसा, त्वचा	मांससार पुरुष के सभी अंग यथा शंख, ललाट, कंधे, वक्ष, हाथ पैर की संधियां भारी, स्थिर व मांस से भरी हुई होती हैं।
भेद	उदर छोटी अस्थियां	शरीर को स्निग्धता, दुढ़ता प्रदान करना अस्थियों की पुष्टि।		स्नायु, जो शरीर में अस्थि व भेद को बांधकर रखती है।	मेदसार पुरुष के वर्ण, स्तर, नेत्र नख, ओष्ठ, मूत्र, पुरीष स्निगध होते है।

धातु	स्थान	गुण-कर्म	धातु सार पुरुष के लक्षण
अस्थि	संपूर्ण शरीर का ढांचा बनाती है।	शरीर का एक निश्चित आकार बनाए रखना शरीर के अवयवों की सुरक्षा प्रदान करना	अस्थिसार पुरुष स्थिर शरीर वाले होते हैं उनके कंधे, सिर, संधि पर्व स्थूल व दृढ़ होते हैं।
मज्जा	स्थूल अस्थियां	अस्थियों का पूरण धातु पुष्टि शरीर में बल व स्निगधता	मज्जा सार पुरुष बलवान, वर्ण व स्वर स्निग्ध तथा उनकी संधियां स्थूल, दीर्घ वृत्ताकार होती है।
शुक्र	सर्व शरीर	धैर्य, बल, हर्ष प्रीति, संतानोत्पत्ति	सौम्य दर्शी, क्षीरपूर्ण नेत्र, वर्ण स्वर, स्निग्ध व निर्मल

ओज

रस से शुक्र पर्यन्त सातों धातुओं का उत्कृष्ट सारभूत अंश 'ओज' कहलाता है। शरीर का बल स्थिरता, सू वर्ण की प्रसन्नता रोग प्रतिरोधक शक्ति को बनाए रखना, इसका कार्य है।

ओज के गुण– सौम्य, स्निग्ध, श्वेत, शीत शरीर स्थर्यकर, पिच्छिल, प्राणों का श्रेष्ठ आधार है।

ओज क्षय के कारण– अभिधात, धातु क्षय, क्रोध, शोक, चिंता, सीमा से अधिक परिश्रम अनशन (इन कार्यो से सदैव बचें)

ओज क्षय के लक्षण

शरीर में थकान बने रहना, स्तब्धता, तंत्र, निद्रा, ग्लानि क्रमशः मूर्च्छा, मोह, प्रलाप व मृत्यु।

मल

दैन्यादिन आहार क चयापचय के फलस्वरूप किन्हीं ऐसे व्याज्य द्रव्यों की उत्पत्ति होती है, जो शरीर में यदि बने रह गए तो शरीर को मलिन करते हैं, उनकी 'मल' संज्ञा है। इन मलों का समय-समय पर सम्यक् मात्रा में शरीर से निष्कासित होते रहना, शरीर के स्वास्थ्य के लिए अत्यावश्यक है।

यह मल सात होते हैं–

पुरीष आहार का मल
शरीर का उपस्तम्भ + वायु-अग्नि को धारण करता है।

मूत्र आशर का मल
बस्ति का पूरण + शरीर में आर्द्रता

स्वेद मेदधातु के चयापचय से उत्पन्न मल
शरीर में क्लेद + त्वचा की सुकुमार करता है।

कफ रस धातु का मल

पित्त रक्त धातु का मल

कान का मैल मांस धातु का मल

केशव नख अस्थि धातु का मल

नेत्र का मल मज्जा धातु का मल

मुख की चिकनाई (यवन पिडिका) शुक्र धातु का मल

संक्षेप में, शरीर में जो तंत्र हैं पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, रक्त संचार तंत्र, स्वसन-प्रश्वासन तंत्र इत्यादि। पाचन तंत्र से हमारा भोजन शरीर में पचता है, भोजन-पाचन से उपलब्ध तत्व से रक्त पोषित होता है, रक्त संचार तंत्र द्वारा पोषित रक्त से शरीर के अन्य अंग भी पुष्ट होते हैं, श्वसन तंत्र से हम सांस लेते हैं। जिससे रक्त पुनः पोषित होता है और उत्सर्जन और पाचन-निष्कासन तंत्र से शरीर (रक्त) से गंदगी बाहर निकलती है। अर्थात् शरीर के सभी तंत्र का आपस में ताल-मेल है और प्रत्येक तंत्र अपने आप में व्यवस्थापूर्वक कार्यरत है। यह शरीर की व्यवस्था है।

प्रवृति

दोषज प्रवृति– शुक्र आर्तव के संयोग होते समय जो दोष प्रबल होता है। उससे प्रवृति बनती है। यह 7 हैं वातज, पित्तज, कफज, द्वनद्वज अन्यथाभाव या द्रास नहीं होता। यह सब आयुक्षय के लक्षण होते हैं इनमें समदोषज श्रेष्ठतम, कफल, श्रेष्ठ, पित्त प्रकृति मध्यम, अन्य विंध कहीं गई है।

	वात	पित्त	कफ
शरीर संगठन	कृश, रूक्ष हाथ-पैर फटे रहते हैं अल्प बल वाला	सुकुमार अंग पीत वर्ण व शिथिल, मध्यम शक्ति शरीर में अधिक स्वेदोत्पत्ति, जिससे शरीर से सदैव दुर्गन्धि आती रहती है। नेत्र, तालु, जिह्वा, ओठ आदि ताम्र वर्ण के/की आभा वाले	स्थूललाड, बलवान प्रियदर्शी
केश, मश्रु (दाड़ी मूछ)	अतिरूक्ष, अल्प केश	खालित्य, पालिय (अकाल युवावस्था में ही केशों झड़ना, सफेद होना)	केश स्निग्ध
नेत्र	चंचल	तेजस्वी, ताम्र वर्ण	बड़े, स्निग्ध
स्वप्न	आकाश में विचरने वाला	नींद में ज्योति, चमकने वाली वस्तुएं जैसे स्वर्ण विद्युत, अग्नि, उल्का देखते हैं।	स्वप्नों में जलाशय देखने वाले
प्रकृति सादृश (गुण व शील में)	बकरी, खरगोश, कुत्ता, कौआ के शरीर के गुण सदृश्य	सर्प, वानर, व्याघ्र, नेवला सदृश्य	गज, बैल, सिंह सदृश्य
शील	मति अस्थिर बहुत ज्यादा असंबद्ध वार्तालाप, शीघ्रगामी वृतश्न, शीतद्वेषी धन, मित्र कम होते हैं।	क्रोधी, तीक्ष्ण अग्नि वाला, उष्ण चीजों से द्वेष, शीघ्र कुपित होकर शीघ्र शांत होने वाला, मेधावी, निपुण मति	मीठी वस्तुओ जिसे प्रिय हों, सहिष्णु, कृतज्ञ, मित्र व धन स्थिर

शरीर में नित्य होने वाले चयापचय से दोष, धातु, मलों की उत्पत्ति सातों धातुओं में सर्वप्रथम 'रस' धातु की उत्पत्ति होती है।

रस →	मांस →	मज्जा →	अस्थि
त्वचा←	वसा←	रक्त←	तंत्रिका तंत्र (नया नहीं बनता)

Nature में वसा पहले बनता है, रक्त बाद में पेड़ पौधों में रस, वसा स्वेदज मां अंग सब आ गए।

शरीर रचना

शरीर की रचना समझने हेतु मुख्यतः निम्न तत्व हैं–
सप्तधातु, त्रिदोष, पंचतंत्र (साथ ही 4 उपांग) तथा पंचकोश
शरीर संतुलन = सप्तधातु, त्रिदोष व पंचकोशों का संतुलन

सप्तधातु

ग्रहण किया हुआ आहार
↓
एक सीमा तक पाचन आमाशय आंत्रों में पहुंच कर
↓
यवृत का रस पहुंचकर, भोजन का अंतिम पाचन
↓
रस बन जाता है (यह लाल वर्ण का तरल)

आंत्रों में बना रस → अस्थि के पोले में
(यकृत प्लीहा से मीठा रस पित्ताशय से कड़वा रस, एक निश्चित अनुपात में मिलकर
↓
मांसधातु (लाल वर्ण, मद) मांस रस मज्जा तरल, चिकनी लाल वर्ण
↓
रक्त (पूरे शरीर में प्रसरण) गर्भस्थ शिशु में 5वें माह के बाद यकृत प्लीहा द्वारा रक्त बनता है। यह मात्रा शिशु शरीर को संचालित करने के लिए पर्याप्त होती है। लेकिन जन्म के बाद बाहर के संसार से संपर्क जब इंद्रियों द्वारा होना आरंभ होता है, तो अधिक रक्त की आवश्यकता होती है तथा रक्त अस्थि के पोले में बनना प्रारंभ होता है।
↓
अस्थि रक्त बनने के बाद रक्त की सहायता से अस्थि बनती है।
↓
स्नायु को अस्थियां का अवलंबन चाहिए तथा स्नायु, अस्थियों को बांधकर सुरक्षा देते हुए एक स्थान में रखते हैं। स्नायु का संरक्षण मांसपेशी करती है।
↓

वसा अस्थि के बिना वसा नहीं बन सकती। यह मांस के ऊपर, त्वचा के नीचे रहती है। वसा मांसपेशी का संरक्षण करती है तथा शरीर को लचीलापान देती है। पर्म की स्वस्थता के लिए वसा जिम्मेदार है।
सभी सप्त धातुएं सह अस्तित्वपूर्वक बनती है।

त्रिदोष निर्माण

अवस्थापाक के दौरान, आहार से रस बनते समय प्रथमतः कफ, मधयतः पित्त आखिर वायु बनता है।

अवयव निर्मिती

हृदय → मांस + मज्जा + रक्त + वसा
प्लीहा → मांस + वसा
पित्ताशय → मांस + वसा
मेधज → सप्तधातु (स्वायु प्रधान)

पंच तंत्र + चतुः उपांग

1.	मेधस	प्लीहा पित्ताशय
2.	हृदय	अस्थि पोला
3.	यकृत	मलाशय, गर्भाशय आदि
4.	वक्क	
5.	फुफ्फुस	

मेधस तंत्र जीवन के संकेत ग्रहण करता है। इसके कार्य-कलाप सुचारू रूप से होते रहें। इस हेतु इसे निरंतर रक्त की आवश्यकता होती है। अस्थि के पाले में जो रक्त बनता है, उसे हृदय तंत्र (circulatory System) मेधस तंत्र सहित संपूर्ण शरीर में पहुंचाता है।
हृदय तंत्र को फुफ्फुस तथा वृक्क तंत्र की आवश्यकता होती है। फुफ्फुस से रक्त को प्राणवायु प्राप्त होता है। तथा वृक्क तंत्र रक्त को शुद्ध करता है। वक्क तंत्र को प्लीहा-यकृत पित्ताशाय सहयोग करते हैं।

पंचकोष

कोष = थैली = क्रिया का समुच्चय

1. अत्र कोष अंत्रमय
2. पाचन कोष प्राणमय

3. दोष कोष मनोमय
4. रस कोष विज्ञानमय
5. धातु कोष आनंदमय

मेधस तंत्र

मानव शरीर में अन्य प्राणावस्था की अपेक्षा जो विशेषता है, जिसके कारण जीवन स्वयं की जागृति हेतु तथा अभिव्यक्त करने हेतु मानव शरीर का चयन करता है वह है–
1. सप्तधातुओं का पूर्णतः विकसित तथा एक निश्चित ratio में होना।
2. समृद्ध मेधस तंत्र
जीवन व शरीर के मध्य वार्तालाप (Communication) का स्रोत मेधस तंत्र है। जीवन, चैतन्य इकाई है। जिसकी कंपनात्मक गति जड़ वस्तुओं (शरीर) से अधिक है। अतः बाहर के जड़ संसार का ज्ञानेन्द्रियां मेधस तंत्र में कंपन द्वारा जो चित्र बनाती हैं, उसे जीवन पहचान लेता है। हरेक जड़ वस्तु से जो संवेदना शरीर ग्रहण करता है, उसका मेधस तंत्र में अलग-2 चित्र बनते हैं, यह चित्र जो जीवन पहचान लेता है उसकी स्मृति चित्र में अंकित (record) हो जाती है।
अन्न, जीवन जन जिस तरह का आस्वादन लेना चाहता है, वह मेधस तंत्र में उसी तरह के कंपन उत्पन्न करता है तथा उस अनुसार मेधस तंत्र अपनी तंत्रिकाओं द्वारा जड़ संसार की वस्तुओं का आस्वादन करता है। मानसिक रोगों में जीवन के हिसाब से मेधस तंत्र काम नहीं कर पाता। जीवन इतना भ्रमित होता है कि अनेकानेक चित्रण होते रहते हैं, बीच में कुछ अलग विषयों का विश्लेषण होने लगता है कई सारे वस्तुओं के आस्वादन एक साथ जीवन करना चाहता है, जिससे चयन भी ठीक से नहीं हो पाता है। जब जीवन इस प्रकार से एक के बाद एक निर्देश मेधस तंत्र को देता जाता है। मेधस तंत्र किसी भी निर्देश के कंपन का पूरा-2 सही चित्र नहीं बना पाता तथा एक समय में थक जाता है। यही मानसिक रोग में होता है।
बाल्यकाल से ही मेधस तंत्र को मजबूत बनाने के लिए कुछ मेध्य औषधियां जैसे ब्राह्मी धृत, वचल आदि निश्चित मात्रा में देने से तथा कंपन का

आदान-प्रदान मेधस तंत्र द्वारा करने के लिए प्रशिक्षित करने पर मेधस तंत्र अपना कार्य सुचारू रूप से कर पाता है।

शरीर रचना

शरीर से तात्पर्य

चार शाखाएं (2 हाथ, 2 पैर), मध्य भाग व सिर, ऐसे षडंगों वाला शरीर होता है।

गर्भाशय में शुक्र व शोणित का संयोग होकर एक पिण्ड बनता है, फिर कोई जीवन इसे अपनी शरीर यात्रा के लिए स्वीकार करता है, इसे गर्भ कहते हैं।

चेतनायुक्त उस गर्भ को वायु विभक्त करता है

तेज पकाता है

जल क्लेदन करता है

पृथ्वी संगठित करता है

आकाश उसे बढ़ाता है।

इस प्रकार बढ़ा हुआ गर्भ जब हाथ-पैर, जिह्वा, वासिका, आदि अंग प्रत्यंगों से युक्त होकर शरीर कहलाता है।

शरीर के अंग-प्रत्यंग, जिनका संहिताओं में वर्णन मिलता है तथा आज MRI, CT scan, X-ray, USG आदि द्वारा तथा Cadance dessection द्वारा देखा जाता है।

हृदय	फुफ्फुस
यकृत	प्लीहा
उण्डुक	गुद

उदर, पृष्ठ, नाभि, वस्ति, ग्रीवा, स्तन, कक्ष, वृषण पार्श्व, मस्तक, ललाट, नासा, शंख, गण्ड, चिबुक, भौं, अंस, बाहु, कपूर, स्फिग, उरू, जानु 20 अंगुलियां, स्रोतस्, 7 त्वचायें, 7 कलायें, 7 आशय, आंते, 2 वृक्क, अस्थियां, संधियां, स्नायुएं, कूर्च, रज्जू, कण्डरा, जाल, सीवुनी, संघात, सीमान्त, मांसपेशियां, शिराएं, धमनियां, गर्भ

हृदय

स्वरूप अधोमुख कमल के समान जाग्रतावस्था में प्रफुल्लित व सुप्तावस्था में संकुचित।

यह विशेषतः 'चेतना स्थान' है इसके आधार से ही प्राणवह धमनियां रहती हैं। ओजस का आश्रय हृदय के नीचे बांई ओर प्लीहा व फुफ्फुस तथा दांई ओर यकृत व क्लोम का स्थान कहा गया है।

हृदय से घान वायु द्वारा प्रेरित किए हुए शुद्ध रक्त से प्राणी तृप्त होते हैं।

फुफ्फुस– यह श्वास उच्छवास क्रिया का स्थान है।

यवृत-प्लीहा– रस को रक्त में परिवर्तित करने में तत्पर अवयव

क्लोम– यह जलवाही सिराओं का मूल है, यह तृष्णा को नियंत्रित करता है।

नाभि– 'नाभि' शरीर का केन्द्र है।

ग्रहण किए हुए आहार का आंत्र में पाचन होने के उपरांत जो आहार रस बनता है, नाभि से प्रारंभ होने वाली शिराएं व धमनियां संपूर्ण शरीर में फैलकर उस रस द्वारा शरीर का पोषण करती रहती है।

वृक्क– उदर की मेदस को पुष्ट करते हैं।

वृषण– ये वीर्यवाहिनी सिराओं के मूल है तथा पौरुष सामर्थ्य का वहन करते हैं।

आशय– (रिक्त स्थान, जो किन्हीं तत्वों को धारण करते हों)

संख्या 7

1. श्लेष्माशस (फुफ्फुस) उर स्थल में
   ↓
2. आमाशय
   ↓
3. अग्नाशय/(अमाशय से उपर नाभि के पित्ताशय बांयी ओर)
4. पवनाशय (अमाशय से नीचे)
5. मलाशय (पवनाशय के नीचे)
6. मूत्राशय
7. हृदय (रक्ताशय)

कला

अंतरंग अवयवों का सुरक्षा धातु व आशय के भीतर का क्लेद जो देहोष्मा से विपक्क होकर उनका एक निश्चित आकार निर्धारित करती है। यह 7 हैं।

1. मांसधरा
2. रक्तधरा
3. मेदोधरा
4. यकृत प्लीहाधरा/श्लेष्मधरा
5. पुरीषधरा
6. पित्तधरा
7. शुक्रधरा

त्वचा संपूर्ण शरीर का बाहरी सुरक्षा कवच त्वचा के भी 7 स्तर हैं, जिनकी अपनी-2 विशेषताएं हैं।

अवभासिनी, लोहिता, श्वेता, ताम्रा, वेदिनी, रोहिणी, मांसधरा

अस्थियां– प्राणियों का शरीर अस्थि रूपी सार पर आधारित है।

संख्या 300

अस्थियां के सिरे जहां एक दूसरे से मिलते हैं, उन्हें संधि कहते हैं। संधियां 2 प्रकार की

- चेष्टावान
- स्थिर

संख्या 210

शरीर की जितनी भी संधियां हैं, वे बहुत से स्नायुओं से बंधी हैं, इससे मनुष्य का भार वहन होता है।

संख्या 900

मांसपेशी

संख्या 500

मांसपेशी सिरा, स्नायु, अस्थिपर्व, संधियों को आच्छादित करके उन्हें दृढ़ता प्रदान करती है तथा शरीर की गति में मुख्य योगदान होता है।

इन अस्थि, संधि, पेशीयों को आपस में जोड़ने वाले अवयव निम्न हैं– कण्डरा, कूर्च, जाल, मांसरज्जू, संधात, सीवनी, सीमन्त।

रन्ध्र बहिर्मुख स्रोतस 9

2 कान, 2 नेत्र, 2 नासा छिद्र, 1 मुख, 1 गुद, 1 मेढ्र

शरीर में संवहन तंत्र

धमनियां 24

नाभि से उत्पन्न होकर

10 उर्ध्वगामी (जो शब्दादि 5 विषयों का वहन करती है) तथा हृदय को प्राप्त हो जाती है।

10 अधोगामी (यह वात, मूत्र, पुरीष, शुक, आर्त्तव का नीचे की ओर वहन करती है।

4 तिर्सक धमनियां (इनके मुखों द्वारा स्वेद का वहन होता है)

सिरायें 700 मूल सिरायें 40

10 वातवह, 10 पित्तवह, 10 कफवह, 10 रक्तवह समस्त सिरायें नाभि से ही उत्पन्न होती हैं।

इंद्रियां

मानव शरीर में दो प्रकार की इंद्रियां हैं, जिनसे मानव (जीवन) अपनी समझ को व्यक्त करता है कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां। ज्ञानेन्द्रियां, उन इंद्रियों को कहते हैं जिनके द्वारा जीवन, वातावरण से सूचनाएं ग्रहण करता है जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह 5 ज्ञानेन्द्रिय हैं। इनके द्वारा शरीर जीवन स्वयं शरीर को बनाए रखने के अर्थ में शरीर के निए उपयोगी वस्तु, वातावरण का चयन कर पाता है, जैसे बासी-सड़ा भोजन का पता, इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हो पाता है तथा जीवन उसे ग्रहण न करने का निर्णय करता है।

इन ज्ञानेन्द्रियों से मानव सुनता है, महसूस करता है, देखता है, चखता है, सूंघता है।

कर्मेन्द्रियां, उन्हें कहते है जिनके द्वारा जीवन कार्य करता है। यह भी 5 हैं– हाथ, पैर, जीभ, मल, मूत्र त्यागने वाले अवयव जिनसे मानव कार्य करता है, चलता है, बोलता है, शरीर की सफाई करता है।

इन दोनों प्रकार की इंद्रियों का प्रयोजन व कार्य निश्चित है जैसे– चलते समय हाथ-पैर एक व्यवस्थित ढंग ये हिलते हैं, जिससे स्थिरता के साथ चलना संभव होता है। अर्थात् यह इंद्रियां अपने में एक व्यवस्था है।

स्रोतस– 11 प्रकार के प्राणवह, अन्नवह, उदकवह, रसवह, रक्तवह, मेदोवह, मूत्रवह, पुरीषवह, शुक्रवह, आर्त्तवह

यह स्रोतस अत्यंत सूक्ष्म होते हैं तथा शरीर का सूक्ष्मतम स्तर पर पोषण करते हैं।

इंद्रियां 10

5 **ज्ञानेन्द्रिय** (श्रोत, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, कंघ्र)

5 **कर्मेन्द्रिय** (पाद, हस्त, वाक, उपास्थ, गुद)

मर्म

सिरा, स्नायु, संधि, संधि, मांस व अस्थियां में होने वाले सन्निपातों/संयोगों को मर्म कहते हैं। इनको ही जीवनधार कहते हैं। इन पर आघात होने पर तत्काल मृत्यु हो सकती है। यह शाखा, कोष्ठ, उर्ध्वजखुगल में सभी स्थानों पर है इनकी संख्या 107 है।

परिणाम की दृष्टि से इनके निम्न भेद है

1. सध प्राणहर
2. कालान्तर प्राणहर
3. विशल्य
4. वैकल्यकर
5. रूजाकर

उपरोक्त वर्णन, सामान्य रूप से शरीर का वर्णन है।

शरीरगत, प्रकृति सहज, कुछ अंतर निम्न हैं–

स्त्री-पुरुष शरीर

यह भेद मानव शरीर की परंपरा बनाए रखने के लिए है।

स्त्री शरीर में अतिरिक्त आशय होता है **गर्भाशय,** जिसमें गर्भ के रूप में नवीन मानव शरीर का निर्माण होता है। स्तनाशय, जिनमें शिशु के लिए दुग्धाहार बनता है। **रजोदर्शन** प्रतिमास, गर्भाशय की शुद्धि होती है। 12 वर्ष

के ऊपर तथा 50-60 वर्ष के पूर्व समय में 1 मास के संचित आर्त्तव को धमनियों द्वारा वायु योनि के द्वार की ओर ले जाता है।

'वयस' तीन प्रकार के होते हैं

(मानव शरीर की यात्रा)

1. **बाल्यावस्था**– जन्म से 16 वर्ष तक इस कालांतर में कफ बढ़ता है। धातुएं अत्यंत मंद होती हैं। Anabotic process निर्माण कार्य की तेजी

2. **मध्यावस्था**

16 से 70 वर्ष के भीतर इसमें पित्त अधिक होता है। Metabolism बहुत तेज होता है।

3. **वद्धावस्था**–

70 वर्ष से ऊपर

इसमें वायु की अधिकता रहती है। Catabolism की प्रधानता।

यह ज्ञान इन-2 अवस्थाओं में होने वाले रोगों को समझने तथा तदानुसार उनकी चिकित्सा करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

The Ancient knowledge of structure and working of human body has been described by modern science as follows:-

Cells (Basic units)

Cells having same again structure & functions jointed by extracellular substructure they togther form

Tissues (4 bypes Tipithelial, Connective, combines Muscular & Nervous Tissues

Organs (Number of organs functioning in co-ordination together form)

Organ System

Various organ systems

Body

Major Organ systems in body are as follows:-

1. Integumentary System

Forms outer covering of body known as skin/mbeguments,

Minly serves to protect the organism, from external environments chemicals

2. Skeletal System

Consists of bones & Carbilages provides shape to body and supporting in function

3. Muscular System

Includes all muscles

Responsible for all movements in our body.

4. Digestive System

Consists of mouth, tongue, salivary glands, pharynx, oesophagus, stomach, infestine, liver, gall bladder, and pancreas.

Performs ingestory digestion, assimilation, absorption & egestion of food.

5 Circulation system

Consists of heart, blood and blood vessels.

Various nutritive substances absorbed from food are transported to different parts of body through blood vascular system.

6. Respiratory System

Consists of nostrils, nasal passages, nazsopharynx, larynx, trachea, bronchi, bronchioles and lungs.

It helps in exchange of respiratory gases (O_2 & CO_2)

7. Excretory System

Consists of kidney, ureters, urinary bladder and urethera.

It elimnates nitrogenous waste products from the body.

8. Nervous System

Consists of brain, spinal cord and nerves. It helps in trainsmitting messages in form of imules in body.

9. Spinal Sensory Stimulz

Consists of ear, eye, nose like receptor organs.

They help in perceiving various stimuli.

10. Endocrine System

Consists of various hormone secrebing glands like pibubary, pineaal, bhyroid, parathyroid, bhumus, adrenal, Istels of langerhans, besbis, ovaries, placenta.

It is co-ordinating system in our body which regulates functions of organs, tissues & various metabolic activities.

11. Reproduction System

Consists of male and female reproduction organs in males, testes,

epididmymis, vas deferens, seminal vericle prostrate gland, compare gland and penis.

In females, ovaries, hallopian bubes, uterus, vagina and mamary glands.

It helps in production of new progeny

All these systems function in cklose co-ordination with each other and enables human body to function as an integrated unit.

मानव शरीर पर वातावरण का प्रभाव होता है। जैसे अधिक ठंड लगने पर शरीर कंपकपाता है। शरीर के कंपकपाने से शरीर में गर्मी पैदा होती है। इसी तरह, गर्मी में शरीर में पसीना आता है। इस पसीने से त्वचा व शरीर की सफाई होती है और शरीर ठंडा रहता है।

शरीर का कंपकपाना या उसमें पसीना आना, शरीर में स्वतः होने वाली क्रियाएं हैं, जिनसे शरीर में होने वाली शारीरिक क्रियाएं शरीर का स्वयं एक व्यवस्था होने का प्रमाण है।

सार रूप में, शरीर और उसके सभी अंग-अवयवों में व्यवस्था है निश्चित समय पर पाचन-निष्कासन होना, समय पर एक गहरी नींद आना आदि। शरीर की व्यवस्था बने रहने पर अर्थात् शरीर स्वस्थ रहने पर समझने-समझाने एवं जीने के सभी आयाम में मानव अच्छी तरह भागीदारी कर सकते हैं।

1. (c) स्वास्थ्य संरक्षण

चिकित्सा हेतु प्रयुक्त विभिन्न वस्तुओं का परिचय

अस्तित्व में चार अवस्थाएं हैं–

1. पदर्थावस्था
2. प्रणावस्था
3. जीवावस्था
4. ज्ञानावस्था

अब अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में यह सभी अवस्थाएं एक-दूसरे से संबंधित हैं तथा परस्पर पूरक हैं तथा यही वास्तविकता ज्ञानावस्था के स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम में शेष सभी अवस्थाओं में उपयोगी होती है, जबकि ज्ञानावस्था (मानव) को शेष अवस्थाओं से अपनी परस्पर पूरकता सिद्ध करनी शेष है।

पदार्थावस्था

परंपरा में रस-शास्त्र के अंतर्गत पदार्थावस्था की उपयोगिता का गहन अध्ययन हुआ है।

मानव शरीर को जिन भी तत्वों की आवश्यकता होती है, वह धरती द्वारा निम्न रूपों में उपलब्ध है–

जल– हमारे शरीर का 70 प्रतिशत हिस्सा जल से निर्मित है। जल के चिकित्सा की दृष्टि से प्रयोग अगले खण्ड में विस्तार से वर्णित है।

वायु– प्राण वायु, शरीर की प्राण कोशाओं की क्रियाशीलता बनाए रखने हेतु अनिवार्य है।

लवण– यह बताए गए हैं–

यथापूर्व ↑	सैंधव	↓ यथा उत्तर
	सामुद्र	उप
	सौवर्चल	वातनाशक
स्निग्ध	रोमक	कफपित्तकारक
मधुर	औकिदज	
मल-मूत्र प्रवर्तक		

इनमें सैधत लवांग, सर्वलवणों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह नेत्रों के लिए हितकारक, पाचकाग्नि का दीपक है।

क्षार

यवक्षार

सज्जीकार

ऊपक्षार

पाकिम क्षार

टंकण क्षार

यह सभी रक्तपित्तकारक अत्यंत उष्ण-तीक्षण, वातकफ नाशक होते हैं।

गुल्म, अर्थ, संग्रहणी, प्रतिन्याय प्लीहा वृद्धि नाशक होते हैं।

रसशास्त्र

पदार्थावस्था में अनेकानेक खनिज हैं परंतु, मानव शरीर के लिए यह तभी उपयोगी हो पाते हैं, जबकि वनौषधियों के संसर्ग से इनका संस्कार अर्थात् गुणान्तधान किया जाए।

संक्षेप में रसशास्त्र के द्रव्यों का परिचय निम्न है–

1. रस (पारद)

यह रसशास्त्र का अति महत्वपूर्ण द्रव्य है।

पर्याप्त शोधन व संस्कार होने के बाद 'पारद' अमृततुल्य, अनेक रोगनाशक शक्ति वाला, रसायन हो जाता है।

रसशास्त्र के अनेकानेक योगों में पारद का अति महत्वपूर्ण स्थान है।

2. महारस

यह 8 होते हैं–

अभ्रक, वैक्रंत, माक्षिक, विमल शिलाजतु, सस्यक, चपल, रसक (तुत्थ)

कतिपय महत्वपूर्ण प्रयोग–

अभ्रक	शीत वीर्य, त्रिदोषनाशक, रसायन, क्षयरोग, कास श्वास, पांडु में लाभप्रद
वैक्रांत	वज्र के अभाव में प्रयुक्त
शिलाजतु	जरा-व्याधि नाशक, विशेष रूप से प्रमेह, कुष्ठ, मेदोरोग, प्लीहा रोगनाशक
तुथ्य	विषध्न, कृमिध्न, व्रणनाशक, त्वकरोगहर, फिरंग-उपदंश नाशक

(जात्यादि धृत/तैल का प्रमुख घटक) जो कि किसी भी प्रकार के क्षत/व्रण में अत्यंत लाभप्रद है।

उपरस

यह भी 8 होते हैं–

गंधक, गेरिक, कासीस, कांक्षी (स्फरिका) हरताल, मनःशिला, अंजन, कंकुष्ठ

गंधक– यह अत्यंत महत्वपूर्ण द्रव्य है इसका सर्वश्रेष्ठ गुण है कि यह पारद को बांध कर उसका बलवीर्य वर्धन करता है। अतः अभी रसौषधियों में पारद व गंधक के योग का प्रयोग होता है।

यह विषघ्न, जंतुध्न, कृमिध्न तथा दीपन-पाचन, आमनाशक है।

गैरिक	कंडूहर, उदर्दनाशक
कासीस	रजः प्रवर्तक, श्वित्रनाशक, बाह्य प्रयोग में गुदभ्रंश नाशक
स्फटिका	बाह्य प्रयोग में व्रणशोधक, श्वितहर
हरताल	जीर्ण फिरंग, श्लीपद, कुष्ठ, भगंदर, प्रमेह, वातव्याधि कफव्याधि नाशक
मनःशिला	कंडू, वृमि, विषनाशक

साधारण रस

यह भी 8 हैं–

कम्पिल्लक	अग्निजार
गौरीपाषाण	गिरिसिंदुर
नवसादर	हिंगुल
कर्पद	मद्दारशंख
कम्पिल्लक	उत्तम कृमिध्न, व्रणरोपक
संखिया	दारूण श्वास, कुष्ठ, श्लीपदोत्थ ज्वर नाशक
नवसादर (Ammonium Chloride)	वृश्चिक विषहर, उत्तम कफनिस्सारक
कर्पद (कौड़ी)	कर्णस्रावनाशक, अम्लपित्त, परिणामशूल हर
अग्निजार	कस्तूरी सदृश गुण-धर्म, संपूर्ण वातरोग, धनुर्वातनाशक
हिंगुल	विशेषतः ज्वर, मंदाग्नि, आमवात नाशक

धातु

स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह, सीसा, वंग, पित्तल, कांस्य

प्रायः भस्म रूप में प्रयुक्त

स्वर्ण	श्रेष्ठ रसायन, मेध्य विषहर, यक्ष्मा व उन्मादरोगनाशक
रजत	उत्तम गर्भाशय शोधक जीर्ण ज्वर, उपस्मार नाशक

ताम्र	यकृत-प्लीहा, ग्रहणी रोग नाशक
वंग	प्रमेहहर, श्वासहर
नाग	प्रमेहहर, मेदोरोग नाशक
यदश	अत्यधिक रजःस्राव, व्रणस्रावनाशक श्रेष्ठ कंपवात नाशक
लोह	पांडु, उदररोग, क्षय, प्रमेहनाशक
मंडर (लाहकिट्ट)	उत्तम रक्तवर्धक, कामला, शेष, शोध नाशक

रत्नवर्ग

वैक्रांत, सूर्यकांत, चंद्रकांत, राजावर्त माणिक्य, मुक्ता, हीरक, पन्ना प्रायः, भस्म रूप में प्रयोग

शीतवार्य, मधुर रस वाले होते हैं। यह सभी कांतिवर्धक, दीपन, विषहर, नेत्ररोग हर हैं।

हीरक षडरसयुक्त, परम हृदय, रसायन, त्रिदोषध्न

सुधावर्ग

प्रमुख द्रव्य

सुधा	उदरशूल, ग्रहणी नाशक मुखपाक में कुल्ला ठीक
रवटिका	अतिसार में लाभप्रद, प्रणरोपक
गोदंती	विषम ज्वर, पित्तज ज्वर नाशक श्वार कास, शिर शूल हर
सामुद्रफेन	कर्णस्राव सुत्राने वाला
कुक्कुटाण्डत्वक्	रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर हर

सिकता वर्ग

कौशेवश्म दुग्धपाषाण (दंतमंजन में प्रयोग)	मसूढ़ों से रक्तस्राव दंतरोगरही, व्रणरोपक, रक्तस्तंभन
नागपाषाण	विषहर, बाल अतिसार, वमन में लाभप्रद

यह रसौषधियां भेदक होती है अल्प मात्रा में तीव्रता से कार्य करती हैं।

पदार्थावस्थ, सभी अवस्थाओं का आधार व सर्वाधिक समृद्ध अवस्था है। अस्तित्व की आधारभूत इकाई परमाणु है। जब दो समान गठनशील परमाणु एकत्र होते हैं, तो अणु बनता है। कई अणु मिलकर अणु रचन बनाते हैं तथा यह अणु रचना संघटित विघटित होते रहकर पदार्थावस्था की विभिन्न इकाईयों में भौतिक क्रिया ही देखने को मिलती है जो कि सम परमाणुओं से निर्मित है।

प्राणावस्था

पदार्थावस्था की भौतिक क्रिया वाली इकाईयां स्वयं में समृद्ध होकर रसायनिक क्रिया में भी सहभागी होते हैं। असमान परमाणु, अलग-अलग परिमाण में मिलकर अपना-2 आचरण त्याग कर एक तीसरा अलग आचरण अपना लेते हैं। इन रसायनिक क्रिया संपन्न अणु, अणु रचनाएं में एक विशिष्ट ताप, दाब व परस्परता में श्वसन प्रश्वसन के रूप में कंपन प्रारंभ हो जाता है और इस प्रकार प्राण कोष का निर्माण होता है। यह प्राण कोषाएं अनेकानेक बार विभाजित होकर प्राणावस्था की इकाईयों का निर्माण करती है।

संपूर्ण वृक्ष, वनस्पति इस प्राणावस्था की ही इकाई हैं। वृक्ष-वनस्पतियों का संपूर्ण वर्णन द्रव्य-गुण नामक विषय में वर्णित है।

द्रव्य– जिसमें गुण, रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव यह पांचों समवाय संबंध से आश्रित हों, उसे द्रव्य कहते हैं।

किसी भी द्रव्य का परिचय इन्हीं पांचों द्वारा होता है।

रस– जिह्वा (स्वादेन्द्रिय) द्वारा जिसका परिचय प्राप्त हो। इसकी उत्पत्ति मुख्य रूप से जल से है। यह 6 होते हैं–

रस	लक्षण सेवन करने पर	गुण-कर्म	अतियोग से हानि
मधुर (गुड़ आदि)	मुख में लेपन करें तृप्ति-तुष्टि उराहुनाद	धातु, बलवर्धक मूर्च्छा-दाहथामक	कास, श्वास, कृमि वमन कारक
अम्ल (नींबू आदि)	चखले मात्र से दांत खट्टे भोजन में रुचि कारक	हृदय के लिए हितकर दीपन, पाचन, अनुलोमक	दाहकारक शौथ, क्षत, दग्ध आदि में पाककारक

लवण (सैंधव आदि)	मुख में शीघ्र घुलता है मुख को गीला करता है	अवयवों में मृदुता आम पाचक मल-मूत्र विशोधक	रक्तपित्त, वातरक्त कंडू, कोठ, शोफ, नपुंसकता कारक
कटु (सौंठ आदि)	जिह्वा में रखने मात्र से सुई की तरह चुभे मुख, नासा, नेत्र से स्राव	दीपन, पाचन, दोषशोधक स्थूलता, कफ, कृमि, कुष्ठ, विष नाशक	बल नाशक शूल कारक दाह कारक
तिक्त (बीम कृप्ज आदि)	सेवन करने पर अन्य रसों का भी अनुभव नहीं होता	कफादि का भेदक शोषक कुष्ठ, ज्वरनाशक	बल नाशक शूल नाशक दाह कारक
कषाय (हरीतकी आदि)	सेवन करने पर मुख की चिपचिपाहट दूर होती है	स्रावों का स्तंभक व्रणरोपक क्लेदशोषक	आश्मान आक्षेप आकुंचन

संक्षेप में

मधुर, अम्ल, लवण रस कफ वर्धक वात, पित्त नाशक

कटु निक्त, कषाय कफल नाशक वाल, पित्त वर्धक

इस अनुसार, द्रव्य के रस का ज्ञान कर उसका उपयोग किया जा सकता हे।

गुण

गुण अर्थात् परस्परता में प्रभाव वस्तुतः पृथ्वी का विशेष गुण गुरू
जल का विशेष गुण स्निग्ध
अग्नि का विशेष गुण तीक्ष्ण
वायु का विशेष गुण रूक्ष
आकाश का विशेष गुण लघु है

इनका ही विस्तार निम्न 20 गुण हैं–

गुरू	नघु
मंद	तीक्ष्ण
शीत	उष्ण
स्निग्ध	रूक्ष
श्लक्षण	खर

सांद	द्रव
मृदु	कठिन
स्थिर	चल

द्रव्यों के गुण, द्रव्य सेवन करने पर तदानुसार प्रभाव उत्पन्न करते हैं, जैसे घी सेवन करने पर शरीर में बाह्याभ्यांतर स्निग्धता उत्पन्न करता है।

वीर्य– यह 2 प्रकार का कहा गया हैं–उष्ण और शीत वीर्य। किसी द्रव्य की क्रिया, उसके वीर्य पर बहुत निर्भर करती है, जैसैं–

शीतवीर्य द्रव्य– आह्लादकारक, मूर्च्छा, तृष्णा, दाहनाशक

उष्णवीर्य– इसके विपरीत पाचनकारक कुलथी में रस कषाय, कटु होते हैं किंतु फिर भी यह वातवर्धक न होकर वातशामक हैं क्योंकि यह उष्णवीर्य है।

विपाक– द्रव्यों का सेवन करने के बाद जाठराग्नि का संयोग होने से एक नवीन रस की उत्पत्ति होती है, इसे विपाक कहते है।

यह 3 होते हैं

	रसों का विपाक	कार्य
1. मधुर विपाक	मधुर व लवण रसों का	कफ दोष वर्धक
2. अम्ल विपाक	अम्ल रस का	पित्त दोष वर्धक
3. कटु विपाक	कटु, तिक्त, कषाय रस का	वात दोष वर्धक

प्रभाव इसे 'अचिन्त्य' कहा गया है।

जहां दो या अधिक द्रव्यों के रज, गुण, वीर्य, विपाक एक समान हों किंतु द्रव्यों के कार्यो में विशेषता दिखे, तो उस विशेषता का कारण 'प्रभाव' होता है।

जैसे– 'सहदेवी' धारण करने पर ही ज्वरनाशक 'मदनफल' उष्णवीर्य, कटु रस वाला है। ऐसे कई द्रव्य हैं किंतु प्रभाव वश मदनफल वापक है।

महत्वपूर्ण औषधिय द्रव्यों का परिचय

प्रकृति में उत्पन्न कोई भी इकाई अनावश्यक नहीं है। उसके रसादि पांचों गुणों का ज्ञान कर सूझ-बूझ से आवश्यकतानुसार इनका उपयोग कर स्वास्थ्य-संरक्षण में इनका योगदान लिया जा सकता है। इनमें वे कुछ ऐसे

द्रव्य हैं, जो सर्वसुलभ अनेक रोगों में उपयोगी अनेक कार्य करने वाले हैं उनके विषय में संक्षिप्त जानकारी निम्न है।

1. तुलसी Ocimum Sancbum/holy Basil

'तुलसी' का माहात्म्य अति पुरातन काल से सर्वजनीन है।

तुलसी के पौधे में ऐसे उड़नशील तेल पाए जाते हैं, जो अपने आस-पास के वातावरण के समस्त रोगोत्पादक जीवाणु विशेषतः ज्वर, राजयामा, कुष्ठ उत्पादक जीवाणु तथा मच्छरों को नष्ट कर देती है। अतः हर घर के परिसर में तुलसी के पौधे अनिवार्य रूप से लगे होने चाहिए। यह सर्वसुलभ है।

तुलसी के पौधे मुख्यतः 2 प्रकार के होते हैं कृष्णा व रामा तुलसी इनमें कृष्णा तुलसी अधिक श्रेष्ठ है।

प्रयोज्यांग– पत्र, बीज, मूल

प्रयोग–

सभी प्रकार के ज्वर विशेषतः कफज, विषम, मोतीझरा ज्वर में विशेष उपयोगी। मोतीझरा में 10 तुलसी पत्र + 1 मात्रा जाविती को पानी से पीसकर शहद मिलाकर प्रयोग।

कफ, श्वास रूजयम्मा नाशक अर्वप वृद्धि नाशक कुष्ठ की सर्वश्रेष्ठ औषधि (बाह्याभ्योत प्रयोग)

सर्पविष में अति लाभप्रद

बाह्य प्रयोग तुलसी मूल + मक्खन + घी में पीसकर लैप

आभ्यांतर– स्वप्स 4 तो हर 4 घंटे पर व्रणप्तक्षालन, कर्णशूल में स्वप्न प्रयोग बीज धातु वर्धक, रसायन।

2. गिलाय Tinospina Corifolia

यह एक बहुवर्षीय आरोही लता है, जो बृहत् वृक्षों परद कुडंलाकार चढ़ती है। नीम पर चढ़ी गिलोय सर्वश्रेष्ठ होती है। इसके पत्र हृदयाकार के होते हैं।

प्रज्योयांग– कांड (1 अंगुल बराबर मोटी) मूल

योग– ताहा कल्क (श्रेष्ठतम) गुटुच्यादि चूर्ण, क्वाथ, अमृतारिष्ट, गिलोय सत्व

रस– कटु, तिक्त, कषाय

गुण– लघु, स्निग्ध

वीर्य उष्ण
विपाक मधुर
प्रयोग— यह त्रिदोषघ्न श्रेष्ठ रसायन, द्रव्य, उत्तम जीवाणु नाशक है।
गिलोय सभी ज्वरों विशेषतः विषम ज्वर, मोतीझरा की श्रेष्ठ औषध Escli. M.buberculi. Bengal Mediums की प्रतिकारक है।
कामला रोग में स्वरस + मधु प्रातः पान रसायन रूप में स्वरस। चूर्ण मधु/गुड़ त्वग्रोमो की श्रेष्ठ औषध है। हाथ प्रमाण में गुग्गुल खादर साथ प्रयोग।

3. त्रिफला

त्रिफला में हरीत की विभी तक व आमल की इन तीनों के फल समभाग (वजन से) में लिए जाते हैं।
यह तीनों एक साथ उत्तम रसायन श्रेष्ठ मृदु विरेचक, अग्नि दीपक, नेत्र्य हैं।

3. (i) हरीतकी Terminalia Chebula

हरड़ का वृक्ष मध्यमाकार होता है। इसकी मूल उत्पतित्त स्थूल गंगा तट है। हरड़ के फल पूर्ण पकने तक वृक्ष में बहुत कम ठहरते हैं। प्रायः कच्ची अवस्था में गिर जाते हैं। कच्चे फल छोटे, काले होते हैं। पक्व फल उत्तम समझा जाता है, यह गोल, 1½ तोले जितना भारी, पानी में डालने में डूब जाता है। पीत वर्ण वाला होता है।
प्रमुख योग— त्रिफला, अगस्त्य हरीतकी, प्रथ्यादिक्वाथ
रस— लवण छोड़कर शेष पांचों रस
गुण— रूक्ष, लघु
वीर्य— उष्ण
विपाक— मधुर
प्रयोग— हरीतकी को माता की तरह हितकर कहा गया है। अच्छा व्रणरोपक है। जीर्ण वृणों में मुखपाक, अर्श में लेप। दंतमंजन में प्रयोग। यह श्रेष्ठ रसायन, नेत्र्य, दीपन, अनुलोमन, कास-श्वास, प्रमेह मूत्रवृच्छ, प्लीहा-यकृत रोग नाशक है।

रसायन प्रयोग
क्रमशः वर्षा ऋतु में सैंधव नमक से (कफ नाशक)
शरद ऋतु में शक्कर (पित्तिनाशक)
हंमत ऋतु में सोंठ
शिशिर ऋतु में पीपल
वसंत ऋतु में मधु
ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ
सेवन करने पर रसायन फल की प्राप्ति होती है।
प्रयोग भेद से गुण भेद—
चबाकर खाने पर जाठराग्नि वर्धक
शिला पर पीसकर मल रोधक
उबाल कर खाने पर मल संग्राहक
भून कर खाने पर त्रिदोषहर
भोजन के साथ खाने पर बल बुद्धि एड़ियों का विकास, त्रिदोषहर।

3. (ii) विभीतकी Terminalia beclerica

इसका वृक्ष 60-100 फीट तक ऊंचा, विशाल होता है। प्रायः देश के सभी प्रांतों में पाया जाता है।
रस— कषाय रस युक्त
गुण— रूक्ष
वीर्य— उष्ण
विपाक— मधुर
प्रयोग— यह कफ, पित्तथामक है। विशेष प्रयोग त्रिफला के रूप में है।
अर्ध पक्व फल विरेचक
पूर्ण पक्व फल संकोच
मुख्य रूप से कास, स्वर भंग में प्रयोग मज्जा का तेल वालों के लिए अत्यंत पौष्टिक, रंजक, कंडूध्य, दाहशामक है।

3. (iii) आमलकी Emblica officinalis

प्रायः भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में मध्यामाकार वृक्ष पाए जाते हैं। बनारसी आंवले सर्वोत्तम कहे जाते हैं Vit-C का सर्वोत्तम Source है।

100 gm में 600-921 mg तक पाया जाता है। सूखे चूर्ण में भी यह पाया जाता है।
रस— पांचों रस (लवण छोड़कर)
गुण— रूक्ष
विपाक— मधुर
वीर्य— शीत
प्रयोग— यह त्रिदोषघ्न विशेषतः पित्तघ्न है। यह अत्यंत वृष्य, रसायन, रक्तपित्त, प्रमेह नाशक है। यकृतमत पित्तदोषनाशक आमलकी रसायन (आंवले चूर्ण को आंवले स्वरज की 21 मावना) अत्यंत श्रेष्ठ रसायन है गोधृत मधु धात्री लौह पांडु, कामला की श्रेष्ठौषध है।
आंवला स्वरस प्रशीताद, जीर्ण क्विंध, पित्तज पूल में उपयोगी।

4. धृतकुमारी

भारतवर्ष में इसका 1-2 फीट ऊंचा बहुवर्षायु क्षुप सर्वत्र पाया जाता है। इसके पत्र मांसल, भलाकार, सीधे फैले हुए होते हैं। इनके अंदर का गुदा ही प्रयोग में आता है।
रस— तिक्त, मधुर
गुण— स्निग्ध
वीर्य— शीत
विपाक— मधुर
प्रयोग— यह त्रिदोष नाशक है। यकृत पर अधिक उपाय सप्तधातुओं पर नित्य सेवनीय, यह अत्यंत उपयोगी द्रव्य है, जिसके कई प्रयोग हैं—
यह उत्तम रसायन, वष्य, वृहण व बलकारक है। महिलाओं में श्वेतप्रदर में उपयोगी। यह आर्त्तवजनन भी है। यह दीपन, पाचन व भेदन है। यकृत विकारों में श्रेष्ठ
बाहय त्वचा व केशों पर लगाने पर स्निग्धता व Quality बढ़ती है।

5. पुनर्नवा Boerhaavia diffusa

इसका बहुवर्षाय क्षुप फैलने वाला, प्रायः रेतिली या परती जमीन में पाया जाता है। इसके पत्र चौड़े, छोटे होते हैं।

रस— तिक्त, मधुर
गुण— रूक्ष
वीर्य— उष्ण
विपाक— सप्तधातुओं पर, यकृत पर कार्य
प्रयोग— पुनर्नवा अर्थात यह शरीर के कोषों को फिर से नवीनता प्रदान करती है। यह वयःस्थापन द्रव्य है। यह प्रधान शोथहर द्रव्य है। मूत्रल गुण के कारण अनेक शोथयुक्त विकारों में जैसे नवीन यकृत विकार जीर्ण उदरावरण शोथ से उत्पन्न जलोदर में अत्यंत लाभप्रद है। इसमें उपस्थित Potasimasalls शरीर में अधिक मूत्रविरेचन होने पर भी potasium की कमी नहीं होने देते। शोथ में इसका शाक खाया जाता है। शोथ में, वृश्चिकदंश, सर्पदंश में गरम कर इसका लैप अत्यंत लाभप्रद है।
कामला में पित्त निर्हरण हेतु उपयोग। नेत्रों के लिए अनुकूल।

ब्राह्मी Bacopa moonieri

संपूर्ण भारतवर्ष में पानी के समीप आर्द्र स्थानों में किंचित् मांसल, प्रसरी क्षुप पाया जाता है।
रस— तिक्त, कषाय, मधुर
गुण— लघु
वीर्य— शीत
विपाक— मधुर
प्रयोयांग— पंचांग (कल्क/चूर्ण रूप में) इससे ही ब्राह्मी धृत का निर्माण।
प्रयोग— ब्राह्मी अचूक मधावर्धक व nervetoxic है। स्मृतिवर्धक, उर्ध्वजत्रुगत विकारों पर कार्य, वाणी सुधारक अवसाद, उन्माद, अपस्मार, Anxiety neurosis. cerebrovascular disease में अत्यंत लाभप्रद है। त्वचा ब्राह्मी एक साथ त्रिदोषनाशक।
विशेष— मंडूकपर्णी (Hytrocobyle asiatica) को इसका प्रतिनिध द्रव्य माना गया है। इसका दीप आर्द्र स्थानों में 6000 फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है। इसका प्रयोग शब्दोच्चारण व त्वग-विकार ठीक करने में भी।

अर्जुन Terminalia arjuna

यह 60-70 फीट ऊंचा सदाहरित वृक्ष विशेषतः हिमालय की तराई में, मध्यभारत में पाया जाता है।

रस– कषाय

वीर्य– शीत

विपाक– मधुर

प्रज्योयांग– छाल (यह अत्यंत स्थूल, मदु व लाल रंग की होती है।)

प्रयोग– चूर्ण, क्षीरपरक, अर्जुनघृत, अर्जुनारिष्ट के रूप में

उपयोग– 1. यह समस्त हड़ रोगों हृद्रोगों की अचूक औषध है यह हृदय की मांसपेशियों की शक्ति बढ़ाकर Cardiac output बढ़ाता है। हृदय के स्पंदन को सुनियोजित करता है। हृदय के विश्राम काल को बढ़ाकर हृदय को मिलने वाले रक्त संरक्षण को भी बढ़ाता है।

2. इसमें जल-विलेय Calcium salts बहुत (25%) पाये जाते हैं। इससे यह रक्तस्तभक है, खून के थक्के जमने से रोकता है। रक्तवाहिनियों का संकोचक है।

3. व्रण, अस्थि भग्न, शोथ में बाह्य आभ्यांतर प्रयोग किया जाता है।

अडूसा वासा Adhatoda vasica

यह 4-6 फुट ऊंचा झाड़ीदार क्षुप है जो प्रायः सभी प्रांतों में पाया जाता है। पुष्प श्वेत वर्ण के 2-3 inch लेनी मंजरियों में लगे रहते हैं।

रस– तिक्त, कषाय

गुण– लघु

वीर्य– शीत

प्रज्योयांग– मूल, पत्र, पुष्प, स्वरस, चूर्ण वासावलेह, वासाधृत के रूप प्रयोग।

प्रयोग– यह उत्तम कफ निःसारक है। बहुत गाढ़ा व चिपचिपा कफ भी ढीला कर आसानी से निकाल देता है। बच्चों के श्वसनक ज्वर में वासा स्वरस + टकण झार + सामुद्र नमक + मधु देते है।

तमक श्वास में वासा + धत्तूर पत्र का धूपमान अत्यंत उपयोगी है। इससे श्वास नलिकाओं में अल्प किंतुं स्थायी विस्तार होता है। रक्तपित्त में वासा

धृत + मधु पत्र जंतुध्न हैं। इसके प्रयोग से जल खराब नहीं होता अधिक मात्रा में वामक-विरेचक।

निम्ब Melia Azadirachba

यह 40-50 फीट ऊंचा वृक्ष सर्वसुलभ है।

रस– तिक्त, कषाय

गुण– लघु

वीर्य– शीत

विपाक– कटु

प्रज्योयांग– छाल, मूलत्वक् पत्र, गोंद, फल, बीज पुष्प, ताड़ी, तैल। सभी अंगों की अपेक्षा तेल अत्यंत उपयोगी होता है।

प्रयोग– नीम छाल, आमपाचन,जीर्ण व विषम ज्वर नाशक है। इसको धनिया, सौठ लौंग, दालचीनी, चिरायता व कटुकी के साथ प्रयोग करना श्रेष्ठ होता है।

किसी प्रकार के कुष्ठ रोग की यह अचूक औषध है।

कुष्ठ रोगी के लिए नीम क्वाथ से स्नान, इसके पत्र कल्क का उध्वर्तन, निम्ब तैल का अभ्यंग निम्ब स्वरस पान, निम्ब पत्र शयन सभी उपयोगी है।

दूषित जीर्ण व्रण, पामा, विचर्विका स्फोट, श्लीपद, युवनपीड़िका सभी में इसका उपयोग है। यह श्रेष्ठ जंतुध्न है।

M. Tuberculi, Typhyi bacberm आदि पर भी इसके घातक प्रभाव देखे गए हैं।

मधुमेह रोग में भी यह सक्त शर्करा कम करने में सहायक है।

निम्ब तैल Spermiadal होने से गर्भनिरोधन में इसका प्रयोग है।

चैत्र मास में इसके कोमल पत्र 7 + 7 काली मिर्च का सेवन करने पर कफ वृद्धि से उत्पन्न सभी रोगों से बचाव हो जाता है।

विल्व Aegle marmelos

यह 30-50 फीट का मध्यमाकार वृक्ष होता है। इसके पत्र संयुक्त त्रिपत्रक होते हैं। फल काफी बड़े, गोल होते हैं।

रस– तिक्त, कषाय

गुण– लघु, रूक्ष

विपाक– कटु

वीर्य– उष्ण

प्रज्योयांग– मुख्यतः फल (पक्व/अपक्व) मूलत्वक् इसका अपक्व फल उत्तम दीपन व संग्राही द्रव्य है। यह कफ-वात शामक, पाचन संस्थान को बल देता है। अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका में अत्यंत लाभप्रद है। कच्चे फल का चूर्ण के रूप में प्रयोगा होता है।

पक्व फल का प्रयोग पानक (शर्वत) के रूप में होता है। यह मधुर, गुरू, मृदुविरेचक होता है। यह जीर्ण विबध, अर्श, संग्रहणी, Ulcerative colins में व्रण के शीघ्र रोपण में लाभप्रद है।

विल्व फल मज्जा कृमिनाशक है। विशेषत्त Hook worm pinwormy thread worm पर।

एरंड Ricinus communis

यह एक वर्षायु ऊंचा क्षुप है। इसके पत्र चौड़े, खंडित, दंतुर होते हैं।

रस– मधुर

गुण– गुरू

वीर्य– उष्ण

प्रज्योयांग– एरंड तैल (बीज से प्राप्त) मूलत्वक् पत्र

प्रयोग– यह वात नाशक श्रेष्ठ औषध है। कटि, वस्ति, शिर शूल, शोथ, आमवात सभी में बाह्याभ्यांतर प्रयोग लाभप्रद है।

एरंड पत्र का स्वेदन अत्यंत लाभप्रद है। एरंड तैल मृदु विरेचक द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ है।

शतावर Asparagus Racemosus

देश के प्रायः सभी प्रांतों में होने वाली कांटेदार, आहोहणशील बहुवर्षाय लता है।

रस– मधुर, तिक्त

गुण– गुरू

वीर्य– शीत

विपाक– मधुर

प्रज्योयांग– मूल (चूर्ण/क्षीरपाक)

प्रयोग– यह श्रेष्ठ रसायन है। Pituitary ovarian axis प्रभाव डालकर यह Harmonal secretions को नियंत्रित करती है। जीवनीय शक्ति बढ़ने में इसका बहुत महत्व है।

गर्भाशय की विधि व्यवस्था ठीक करती है। रक्तपित्त में भी लाभप्रद।

जीवावस्था

जीवावस्था के अंतर्गत विकसित स्तनधारी जीव आते हैं, जिनके शरीर, सप्तधातु से निर्मित हो स्नायु तंत्र पूर्णतः विकसित हो तथा जो मानव के संकेतों को समझ पाए।

जीवावस्था की निम्न रचनाएं, ज्ञानावस्था के लिए उपयोगी हैं

दुग्ध व दुग्ध विकार

मधु

मल विशेषतः गाय का

मूत्र

सींग, खुर

दुग्ध

सामान्य गुण

1. मधुर रस युक्त, शीतल, स्निग्ध
2. वात-पित्त नाशक
3. बलकारक, रसायन
4. संपूर्ण प्राणियों के लिए सात्म्य

जीर्ण, ज्वर, मानसिक रोग, शोष, भ्रम गर्भ स्राव व दूध अत्यंत हितकर है।

प्रायः दूध के 3 स्रोत ज्यादा उपयोग में आते हैं–

गाय का भैंस का, बकरी का। इनके गुण निम्नानुसार हैं–

गोदुग्ध के गुण– सभी दुग्धों में श्रेष्ठतम गोदुग्ध 'धारोष्ण' सेवन करना, श्रेष्ठ कहा गया है। (तुरंत दुहा हुआ, जिसमें स्वयं की उष्णता हो)।

यह विशेषकर रस व विपाक में मधुर, शीतल वात-पित्त रक्त विकार नाशक उस पर भी कृष्ण वर्ण की गाय, जो जांगल देश की हो तथा सायंकाल में दूहा हुआ दूध, उत्तम होता है।

भैंस का दूध— यह अधिक गुरू, मधुर, अभिस्यंदी, निज लाने वाला, अग्नि नाशक होता है।

अजा दुग्ध— लघु, ग्राही, कषाय व मधुर रस वाला, विशेषतः क्षय, कास, ज्वर नाशक है।

दही के सामान्य गुण— यह उष्ण, गुरू, किंचित, कषाय रस, विपाक में अम्ल भेद कफ वर्धक होता है। यह अतिसार, मूत्रकृच्छ, अरूचि नाशक होता है।

दही सेवन के नियम— दही सदैव शक्कर/गुड़/मूंग दाल/मधु मिलाकर ही सेवन करना चाहिए।

रात्रि में दही सेवन का निषेध है। दही को गरम करके नहीं खाना चाहिउ। हेमंत, शिशिर, वर्षा ऋतु में दही सेवन करें, शरद, ग्रीष्म, वसंत ऋतु में दही सेवन अधजमी दही त्रिदोषकारक होता है।

तक्र

तक्र कई प्रकार से निर्मित होता है, इनमें श्रेष्ठ होती है— इच्छिका जिस दही में से प्रथम मथकर मक्खन निकाल लिया हो पुनः उसी में अधिक मात्रा में जल डालकर फिर मथा जाए तो छाछ तैयार होती है। यह विशेषकर लघु, शीतल, श्रम व वृषा नाशक, अग्निदीपक है।

ग्रीष्म ऋतु में, क्षय रोग में, मूर्च्छा, दाह, रक्तपित्त रोगी में यह हितकर है।

नवनीत मक्खन के गुण

यह तुरंत निकाला हुआ ही प्रयोग करना चाहिए। यह लघु, शीतल, मधुर रस वाला, ग्राही मेध्य, नेत्र्य, शिशुओं के लिए अत्यंत हितकर है।

धृत के गुण

यह रसायन, नेत्र्य, मेध्य, नाड़ी बल दायक, दीपन है। यह विशेषतः वात पैत्तिक विकारों, विष, प्रण, अग्निदग्ध, अनिद्रा में अत्यंत उपयोगी है।

उपरोक्त सभी दुग्धविकार, गोदुग्ध के ही श्रेष्ठ हैं।

मूत्रवर्ग

गोमूत्र

अन्य प्राणियों की अपेक्षा गोमूत्र अधिक उपयोगी है। यह कटु तिक्त कषाय रस युक्त, तीक्ष्ण, उष्ण लघु है। यह विशेषतः वात-पित्त नाशक, शूल-गुल्म, कास-श्वास, कुष्ठ, कामला पांडु रोग नाशक है। कर्णपूरण करने पर कर्णशूल नाशक है। गोमूत्र से 96 प्रतिशत द्रव तथा 4 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं। मुख्य रूप से उपस्थित तत्व निम्न हैं—

Urea Creatinine Disinfectant

Sulphuric acid— चर्म रोग नाशक

Ammonia— अम्ल पित्तहर

Potassium Sodium Calcium, Magnesium— अस्थि, दंत के निर्माण में सहायक Enzyme क्रिया का प्रेरक

मल गोमय/गोबर

गोबर एक श्रेष्ठ कीटनाशक द्रव्य है। गोबर के लेपन व सेवन से Malaria, Cholera आदि के कीटाणु का नाश होता है।

यह सर्पदंश, दंतरोग, अग्निदग्ध चर्मविकार में सेवन करने पर सदा लाभ पहुंचाता है।

इसमें भोजन का आवश्यक तत्व Vitamin B12 होता है। यह बलवर्धक, शोधक, रेचक है।

सींग/रतुर आदि

अपस्मार रोग में वर्णन है कि इसमें कौए, गिद्ध आदि के चोंच, पंख, मल का धूप प्रयोग करें। अर्थात् जीवावस्था के शरीर के यह भी उपयोगी है।

मधुवर्ग

सामान्य रूप से लघु, शीतल, रूक्ष, ग्राही, अग्निदीपक है।

यह व्रणों के शोधन व रोपण करने में उत्तम है।

स्रोतो मार्ग शोधक है।

योगवाही

विशेषतः कफ, मेद, मलबंध, प्रमेह, क्षत, क्षय नाशक है।

यह कई औषधियों का अनुपात है। यह मधुमक्खियों द्वारा फूलों का रसों को

एकत्र कर उस पर Gnzymatic क्रिया करके तैयार हुआ संपाच्य द्रव्य होता है।

औषध निर्माण

पंचविध कषाय कल्पना

किसी भी स्थावर-जांगम द्रव्य को सेवन योग्य बनाकर ही प्रयोग में लाया जा सकता है, इसके लिए आवश्यकतानुसार कई कल्पनाएं वर्णित हैं। उनका प्रयोग निम्न बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है—

- द्रव्य का सारभाग (active principle) किस रूप में सर्वाधिक प्राप्त होगा जैसे— जल में घुलनशील हो, तो स्वरस/वल्क स्नेह में घुलनशील तत्व हों, तो स्नेह कल्पना की जानी चाहिए।
- चिरस्थायी बनाने के लिए
- गुणवत्ता में वृद्धि
- रोगी की आयु, रोग की अवस्था व रूचि अनुसार औषध कल्पना की जाती है।

चरक संहिता में पंचविध कषाय कल्पनाएं निम्न कही गई हैं—

1. स्वरस कल्पना	
2. कल्क कल्पना	अधिक
3. श्रृत कल्पना	बलवान
4. हिम/शीत कल्पना	गुरू
5. फाण्ट कल्पना	शीघ्र प्रभावकारी

यह मूल कल्पनाएं हैं। अन्य अनेकानिक कल्पनाएं, इन्हीं का रूपांतर है।

'स्वरस' कल्पना

भूमि से तुरंत उखाड़ी गई अप्त औषधि को ठीक से साफ कर उसे हाथ से मसलकर या किसी यंत्र से दबाकर, वस्त्र से निचोड़कर जो रस निकाला जाता है, उसे 'स्वरस' कहते हैं।

शतावर, गिलोय, तुलसी, आर्द्रक, वासा इनका प्रायः 'स्वरस' अधिक उपयोगी है। इसका प्रयोग बनाने के 4-6 घंटे के अंदर ही करें।

'कल्क' कल्पना

आर्द्र द्रव्य को अच्छी तरह साफ करके सिल पर खूब महीन पीसकर तथा सूखे द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण में कोई द्रव्य पदार्थ मिलाकर 'कल्क' बनाया जाता है। इसका प्रयोग भी तुरंत ही करें।

निम्ब के पंचांग का कल्क बनाकर उसे व्रण रोपण व शोधन में उपयोग में लाया जाता है।

'कल्क' कल्पना के अंतर्गत ही चूर्ण कल्पना आती है। शुष्क द्रव्यों को महीन पीसकर वस्त्रपूत करके चूर्ण कल्पना की जाती है।

कुछ महत्वपूर्ण चूर्ण कल्पनाएं—

सितोपलादि चूर्ण

मिश्री	16 भाग
वंशलोचन	8 भाग
बड़ी पिप्पली	4 भाग
छोटी इलाइची	2 भाग
दालचीनी	1 भाग

उपरोक्त द्रव्यों को अलग-अलग कूट-पीस कर, वस्त्रपूतकर मिला लें। यह सभी घरों में रखने वाला औषध है। यह बालकों के लिए श्रेष्ठ है। सभी प्रकार के कास, श्वास, क्षय, जीर्ण ज्वर में लाभप्रद है।

हिंग्वाष्टक चूर्ण

शुण्ठी	800 gm
मरिच	800 gm
अजमोदा	800 gm
सैंधव लवण	800 gm
श्वेत जीरक	800 gm
स्याह जीरक	800 gm
शु हिंग	100 gm

1-7 द्रव्यों को पृथक-2 वस्त्रपूत चूर्ण कर लें। पुनः हिंग को घी में हल्का भून लें, फिर सभी में मर्दनकर, वस्त्रपूत कर रख लें।

यह उत्तम दीपन-पाचन है। यह आध्मान, शूल नाशक है।

त्रिफला चूर्ण

हरड़, बहेड़ा, आंवला को क्रमशः 1 2 4 नग में मिलाकर त्रिफला बनता है या भार में समभाग। यह नेत्रों के लिए अत्यंत हितकर, प्रमेह, विषम ज्वर नाशक है।

त्रिकटु चूर्ण

पिप्पली, मरिच, सोंठ समभाग में यह दीपन है, मेदी दोष, कास नाशक है।

चूर्ण सेवा विधि–

धृत आदि अनुपान में लेना हो, तो दुगुनी जल आदि द्रव्य में लेना हो, तो चौगुनी मात्रा में लें।

वटी कल्पना

सूक्ष्म चूर्ण को स्वरस, गोमूत्र, दुग्ध या मधु आदि किसी द्रव्य पदार्थ की भावना देकर पीस लें या गुड़/शक्कर/गुग्गुल/कोई द्रव पदार्थ के साथ आग पर लेह जैसा पकाकर विभिन्न प्रकार की वटियां बनाई जाती है।

चूर्ण की अपेक्षा यह अधिक समय तक उपयोगी रहते हैं, सेवन करने में अरूचिकर नहीं रहते।

वटी बनाते समय	द्रव्य पदार्थ 2 गुने
	शक्कर 4 गुनी
	गुड़ 2 गुनी
	गुग्गुल/मधु समान भाग लें

लवंगादि वटी

लवंग, मरिच, बहेड़ा फलत्वक् समभाग वदिरकाष्ठसार 3 भाग लेकर सभी को चूर्ण कर बबूल वक्षत्वक् के क्वत्थ की 3 भावना देकर खूब मर्दन कर बना लें। यह अतिशीघ्र कास को नष्ट करती है।

त्रिफला गुग्गुलू

त्रिफला चूर्ण 12 तो., पीपल चूर्ण 4 तो., शु. गुग्मुल 20 तो. सब का मिलाकर घी के योग से चूर्ण कर के वटी बनाएं। अर्श-भगंदर की श्रेष्ठ औषध है।

क्वाथ कल्पना

जौकूट किए हुए 4 तो औषध द्रव्य में 16 गुना जल डालकर मंदाग्नि में आठवां भाग अवशिष्ट रहने तक पकाएं। यह क्वाथ कल्पना है।

क्वाथ में	शक्कर	मधु	
वातरोग में	1/4	1/16	
पित्त रोग में	1/8	1/8	डालें
कफ रोग में	1/16	1/14	

जीरा, हींग (धृत अर्जित कर) क्षार, लवण, त्रिकटु सूक्ष्म चूर्ण करके 1-1 शाण (24 रत्ती) की मात्रा में मिलाएं।

दूध, घी, तैल, मूत्र आदि द्रव, कल्क 1 तोला की मात्रा में डालें।

क्वाथ को कभी-भी पात्र का मुख ढककर न पकाएं।

ऐसे द्रव्य जिनके गुण, वीर्य उड़नशील तैल में हैं जैसे सौंफ, केवड़ा, गुलाब इनकी क्वाथ कल्पना न करके अन्यान्य कल्पना करें।

परोलादि क्वाथ

परोलपत्र, त्रिफला, कटुकी, गिलोय, वासापत्र का क्वाथ मधु के साथ ज्वर विशेपतः कफ ज्वर नाशक है।

धान्य नागर क्वाथ

धनियां और सौंठ का क्वाथ दीपन-पाचन है। एरण्ड मूल से युक्त उक्त क्वाथ आमवात का थूल नाशक है।

क्षीरपाक कल्पना

औपध द्रव्य	1 तोला
जल	15 तोला
गोदुग्ध	15 तोला लें

मंदाग्नि पर पाक करते हुए जब केवल दूध ही शेष रह जाए तब उतार कर छानकर यथारूचि चीनी मिलाकर पान करें। लवण, अम्ल, कपाय रस वाले द्रव्यों का क्षीरपाक नहीं होता। उदा अर्जुनक्षीरपाक, रसोनक्षीर पाक शतावर क्षीरपाक आदि।

हिम कल्पना

1 पल (4 तो.) द्रव्य को भली-भांति कूट पीसकर मिट्टी के पात्र में डालकर 24 तो. जल में रातभर भिगा रहने दें, प्रातः काल छानकर इसे पीयें। इसकी मात्रा 8 तोला है।

धान्य हिम

2 तो. धनिया लेकर कूट पीस कर 12 तो. जल मिलाकर रत्र दें। सुबह उसे छानकर पीयें। यह अन्तदहि, तृष्णा नाशक है।

फाण्ट कल्पना

उचित रूप से कूटे हुए द्रव्य को 4 तो. की मात्रा में लेकर 16 तो. उष्ण जल डालकर वस्त्रपूत कर लें।

पंचकील फाण्ट

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चितकमूल, सौंठ 1/2-1/2 तो.

इन द्रव्यों को सममात्रा में लेकर यवकूट करके 16 तो. उबलते जल में डालकर उबाल कर सेवन करें। यह कफज्वर, दीपन-पाचन है।

अवलेह कल्पना

स्वरस, क्वाथ हिम, फाण्पदि कल्पनाओं को मंदाग्नि पर पकाते हुए आवश्यकतानुसार उसमें चूर्णो का प्रक्षेप तथा गुड़ादि डालकर गाढ़ा करने को अवलेह कल्पना कहते हैं।

वासालेह, च्यवनप्रशावलेह

स्नेह कल्पना धृत पाक/तैलपाक

4 तो. औषध द्रव्यों में का कल्क उससे 4 गुना मूर्च्छित स्नेह तथा उससे 4 गुना जल/द्रव्य डालकर पाक कर स्नेह कल्पना करें।

औषध द्रव्यों व उनसे निर्मित कल्पनाओं का बलाबल

स्वास्थ्य-संरक्षण हेतु या रोग प्रशमन हेतु प्रयुक्त औषध द्रव्यों से अपेक्षित परिणाम तभी प्राप्त हो पाते हैं, जब कि औषध द्रव्य व उनसे निर्मित कल्पनाएं पर्याप्त बलवान (वीर्यवान) हों इस हेतु, निम्न बिंदु ध्यान रखने योग्य हैं–

प्रशस्त भूमि

1. समतल भूमि, जिसमें गड्ढे न हों, कंकड, वाली मिट्टी, बालू पत्थर, क्षारीय लवणीय मिट्टी न हो।
2. जहां कि मिट्टी काली, लाल या पांडुवर्ण की हो
3. जहां की मिट्टी स्निग्ध हो, फटी हुई न हो।
4. जहां पानी हमेशा भरा हुआ न रहे।
5. जहां श्मशान, वधस्थान या देवालय न हो।

पाथ ही, व्याधि के अनुरूप जिस प्रदेश की औषधियां रोगी के लिए उपयुक्त हो, उसी प्रदेश की औषधियां ग्रहण करें।

हिमालय प्रदेश आदि शीत प्रदेशों में उत्पन्न औषधियां शीत वीर्य वाली होती हैं इन्हें विसर्ग काल (वर्षा से शिशिर ऋतु) में ग्रहण करें।

विन्ध्य प्रदेश आदि गरम प्रदेशों में उष्ण वीर्य वाली औषधियां होती हैं। इन्हें आदान काल (वसंत, ग्रीष्म ऋतु) में ग्रहण करें।

ऐसा करने पर क्रमशः उष्ण वीर्य द्रव्यों में कटु, उपण, रूक्ष गुण तथा शीत वीर्य द्रव्यों में कटु, उपण, रूक्ष गुण तथा शीत वीर्य द्रव्यों में मधुर, शीत, सिनग्ध आदि गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

औषध ग्रहण विधि

– जो औषध कृमि, विष, धूप, वायु, अग्नि, जल से नष्ट न हुई हो। पूर्ण रस युक्त हो, जिसकी जड़ें भूमि में गहराई तक गई हों।

– पुष्य, नक्षत्र मगशिरा अश्विनी नक्षत्रों में उत्तर या पूर्वाभिमुख होकर औषध ग्रहण करें।

– सम्पूर्ण कार्यो के लिए शरद ऋतु में औषधियों का संग्रह करना चाहिए क्योंकि इस ऋतु में सभी औषधियां सरस होती हैं

औषध द्रव्यों का वह भाग जिसमें कि उसके कार्यकारी तत्व सर्वाधिक हो, वह 'प्रयोज्यांग' कहलाता है तथा उपरोक्त वर्णित सामान्य नियम के अतिरिक्त इनको ग्रहणकाल में कुछ विशेषता होती है। कुछ एक उदाहरण निम्न है–

वत्सनाभ-मूल-ग्रीष्म व शिशिर ऋतु खदिर, चंदन कषष्ठ सार हेमंत ऋतु में

विविध कल्पनाएं व उनकी सवीर्यता

कषाय कल्पनाओं का भी समय अलग-अलग मर्यादित है, जिनसे वह सवीर्य बने रहते हैं, यथा–

फाण्ट पेया	तुरंत गर्म ही उपयोगी है
स्वरस हिम	4-6 घंटे तक
क्वाथ, कल्क	1 दिन
धृत, पाक	3-4 माह
चूर्ण	2-6 माह तक
तैलपाक, घनसत्व	1 वर्ष तक
गुग्गुलपाक, वटी	
भस्म, पर्पटी पोली, दासव अरिष्ट	अधिकाधिक पुराने

संरक्षण विधि

अंत में, Raw drugs व Prepared/Processed medicines दोनों सवीर्य बनी रहें, इस हेतु यह आवश्यक है कि उनका उचित विधि से संरक्षण किया जाए, इस हेतु निम्न बातें आवश्यक हैं–

औषध संरक्षणार्थ भवन ऐसा हो जिसकी भूमि सीलन रहित हो, छत ऊंची हो Cross ventilation की व्यवस्था हो, वर्षा-शीत-ग्रीष्म ऋतु का दुष्प्रभाव न हो, अग्नि-जल धुंआ धूल वर्षा व जंतुओं का प्रवेश न हो। समय-2 पर गुग्मुल आदि का धूप हो। भेषजामार के आगे बहा सा भू-भाग हो जहां संग्रहीत औषधियों को हर 2-5 माह पर धूप दिखाते रहें।

इस प्रकार, औषध द्रव्यों को अधिक समय तक वीर्यवान रखा जा सकता है। वीर्यवान औषध ही रोग हरण में समर्थ होती है।

खंड-II

स्वास्थ्य संरक्षण

मानव जीवन व शरीर का संयुक्त रूप है। जीवन, अक्षय बल व शक्ति संपन्न इकाई है, जो कभी नहीं थकता। शरीर एक भौतिक रसायनिक वस्तु है जिसकी कार्य करते रहने पर शक्ति (उर्जा) क्षय होती है तथा यह उर्जा आहार द्वारा पोषण से पुनः प्राप्त होती है।

मानवीय आहार क्या हो, कैसा हो इसकी समझ जागृत जीवन में होती है। मानव शरीर की बनावट व व्यवस्था समझता है। तो उसको बनाए रखने के लिए कार्य करता है। समझकर आहार सुनिश्चित करने से ही मानव का शरीर स्वस्थ रहता है। आहार एक ऐसी वस्तु है जो शरीर में सहजता से पच जाती है। आहार के पचने पर मानव के शरीर में रस बनता है, जो शरीर के निए आवश्यक तत्व होते हैं। यह रस शरीर की अन्य धातुओं को शोधित करते हैं। भोजन को पचने में समय लगता है इसलिए मानव को कुछ अंतराल में भोजन की आवश्यकता होती है। भूख लगने पर किया गया भोजन ही लाभप्रद होता है। शारीरिक श्रम से मानव को पर्याप्त भूख लगती है। व्यायाम से मानव शरीर की मांस पेशियां पुष्ट होती हैं। जिससे शरीर तंत्र मजबूत होता है। पाचन व उर्त्सन तंत्र के मजबूत होने से मानव शरीर की सफाई अर्थात् धातुओं व आहार के चयापचय से उत्पन्न मल के निष्कासन व्यवस्थित होती है। इसलिए स्वस्थ मानव को स्वास्थ्य बनाए रखने हेतु आहार, श्रम, व्यायाम व विश्राम (संतुलित मात्रा में) इन सभी की आवश्यकता है।

मानवीय आहार

मानव की जागृति प्रमाणित होने के क्रम में आहार एक महत्वपूर्ण भाग है। मानव आहार की समझ के लिए मानवेत्तर प्रवृति की सभी अवस्थाओं का प्रयोजन, मानव का प्रयोजन व मानवीय प्रयोजन को पूरा करने के क्रम में शरीर का प्रयोजन स्पष्ट होना अनिवार्य है।

मानव का प्रयोजन, जीवन जागृति में प्रमाणित करना है। प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखते हुए मानवीय व्यवस्था के पांचों आयामों में भागीदारी

करना ही जागृति को प्रमाणित करना है। ऐसी अवस्था में आहार का उद्देश्य मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखना है। भोग, संघर्ष के लिए प्रयुक्त शरीर के आहार अलग प्रकार के होते हैं। व्यवस्था में जीने के लिए अलग प्रकार के आहार होते हैं। स्वाद के लिए अनगिनत व्यंजन चाहिए तो भी तृप्ति संभव नहीं है। विभिन्न भौगोलिक परिस्थिति में उगने वाली वनस्पति उस स्थान विशेष में रहने वाले मानव के लिए स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। इसलिए सीमित शाकाहार प्रजाति के सेवन से मानव अपने शरीर को स्वस्थ बनाए रख सकता है एवं अपने समय का अधिक भाग मानवीय व्यवस्था के भागीदार में लगा सकता है। यही जीवन की तृप्ति एवं उसकी परंपरा बनाना है।

मानव के लिए उचित आहार का निर्णय करने के लिए मानव जीवन का प्रयोजन व शरीर रचना, इन दोनों आधार पर ध्यान देना होगा। मानव के लिए शाकाहार ही श्रेष्ठ व उचित आहार है। यह निम्न बिंदुओं से स्पष्ट होता है।

– मानव शरीर में जबड़े, दांत, नाखुन की संरचना मांसाहारियों की तरह नहीं, शाकाहारी जैसी है।

– मांसाहारी प्राणी चाट कर पानी पाते हैं जबकि मानव व अन्य शाकाहारी होने से पानी पीते हैं।

– मानव व अन्य शाकाहारियों की आंतों की लंबाई मांसाहारियों से अधिक होती है। मांस वर्ग की रचनाएं, मानव शरीर में पाचन के लिए गरिष्ठ होती हैं, इन्हें कच्चा खाना संभव नहीं है। मांस पाचन के उपरांत बने द्रव्य शरीर के रसों को उत्तेजित करते हैं एवं इनकी अधिक मात्रा होने पर तथा लंबे समय तक इनका सेवन करने पर शरीर रोगी हो जाता है। आज भी केवल शुद्ध मांसाहारी मानव नहीं पाए जाते हैं, अपितु प्रधान रूप से शाकाहारी अल्प मात्रा में मांस सेवन करते हैं।

अतएव यहां ग्रहण करने योग्य शाकाहारी आहार के गुण उन्हें ग्रहण करने की विधि आदि विस्तार से प्रस्तावित है।

मानव जीवन का शुभारंभ गर्भाधान से होता है।

गर्भाधान के पूर्व आहार-विहार–

स्वास्थ्य की नींव गर्भकाल से ही होती है। तब से ही स्वस्थ परंपरा की आवश्यकता होती है। इसमें माता-पिता व पूरे परिवार की जागृति की मुख्य भूमिका है। संतुलित व पोषक आहार-विहार करते रहने के अतिरिक्त इस बात की परम आवश्यकता है कि पूरी गर्भावस्था के दौरान सभी परिवारजन प्रसन्नचित रहें। नए शिशु के जन्म हेतु शुभकामना इस आशा से करें कि कोई जीवन अपनी जागृति को इस स्वस्थ शरीर के द्वारा प्रमाणित करेगा। उन्हें प्रसन्नचित रहते हुए उपयोगी संवाद कार्य-कलापों में संलग्न रहना चाहिए तथा अनावश्यक संवाद व कार्य-कलापों को पूर्णतः त्याग देना चाहिए। यह जाग्रत मानव परंपरा में सहज ही उपलब्ध रहता है। माता के गर्भ में स्वस्थ, दृढ़, सुंदर शरीर के निर्माण की व्यवस्था बनी ही हुई है, बस माता-पिता के संयमपूर्वक आहार-विहार से यह सरल-सहज हो जाता है। हरेक मानव, गर्भावस्था से ही शिशु के स्वास्थ्य की कामना करता है तथा जन्म के बाद शिशु के शरीर का अपने सर्वोत्तम ज्ञान के अनुसार पोषण-संरक्षण करने का प्रयास करते हैं।

गर्भाधान से 1 माह पूर्व दोनों स्त्री-पुरुष का विधिपूर्वक शोधन कराकर पुरुष को मधुर द्रव्यों से सिद्ध दूध-घी तथा स्त्री को तैल-उड़द प्रधान द्रव्यों का सेवन करना चाहिए।

गर्भधारण हो जाने के बाद, गर्भिणी के लिए ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें निम्न हैं–

स्वच्छ व प्रसन्न रहते हुए दूध, द्रव (पतली) मधुर,-पाय, स्निग्ध, अग्नि बढ़ाने वाली वस्तुएं अधिकाधिक ग्रहण करें।

गर्भ में जैसे-2 अंग-प्रत्यंग का विकास होता है वैसे-वैसे गर्भिणी के आहार में आवश्यक परिवर्तन होता रहें, तो गर्भ शरीर का विकास अपेक्षित होता है।

मासानुसार गर्भिणी परिचर्या

प्रथम मास	दूध (बिना संस्कार किया) + सात्म्य भोजन
द्वितीय मास	मधुर गण से साधित दूध + सात्म्य भोजन

तृतीय मास	दूध + मधु + धृत (असमान मात्रा में)
चतुर्थ मास	दूध + मक्खन
पंचम मास	दूध + धृत
षष्ठ मास	गोखरू आदि मधुर द्रव्यों से सिद धृत दूध
सप्तम मास	पृथक् पर्ण्यादि से सिद्ध धृत
अष्टम मास	दूध + यवागू + घी
	(चावल को 4 गुना दूध में पकाकर घा मिलाकर)

विशेष– दूसरे से तीसरे माह के मध्य यौद्दध (गर्भ की रचना हेतु आवश्यक द्रव्यों का बोध माता को विशिष्ट इच्छाओं के रूप में होता है। इन इच्छाओं की पूर्ति गर्भ के संपूर्ण विकास हेतु अनिवार्य होती है। अतः इनका विशेष ध्यान रखें।

प्रसव होने के उपरांत

शिशु आहार– शिशु जन्म के बाद उसका मुख घी + सेंधानमक से साफ करके आवश्यक जात कर्म करके

प्रथम दिन– सर्वप्रथम घी मधु + स्वर्णभस्म दूसरे, तीसरे दिन लक्ष्मण जे सिद्ध धृत तत्पश्चात् कुछ दिन मधु धृत (विषम मात्रा में) दें।

प्रथम दिन से ही माता का दुग्ध यथेष्ट मात्रा में दें। 6 माह तक केवल दुग्धपान कराएं। माता का दुग्ध कुछ कम हो तो गोदुग्ध का प्रयोग ही श्रेयस्कर है।

6 माह में अन्नप्रशन कराएं। प्रारंभ में मौसमी फलों का रस पर्याप्त मात्रा में दें। धीरे से लघु, हितकर अन्न, अच्छी प्रकार blend कर थोड़ी-2 मात्रा में दें।

10 माह के बाद अन्न के प्रकार व मात्रा बढ़ा सकते है।

अन्न जैसे-2 बढ़े वैसे-2 जलपान की मात्रा बढ़ाना चाहिए। दूध आवश्यकतानुसार दें।

कुछ शिशु के लिए उपयुक्त आहार कल्पनाएं–

शुरूआत की दृष्टि से

फल, सब्जियों का रस/सूप सूजी की लप्सी (नमकीन/मीठी), रागी, चावल को धृत भर्जित कर पीस कर जल/दूध में पकाकर दें।

मखाने की खीर

बाद में,

गेहूं, मूंगफली, मूंग दाल सभी को अंकुरित करके, धृत भर्जित करके पीसकर जल में पका लें।

ज्वर, रागी का मिला हुआ आटा को दूध में या लप्सी

दलिया

सत्तू

सभी सब्जियां

रोग प्रतिरोधक शक्ति बनी रहे, इस हेतु दैन्यदिन में ब्राह्मी गिलोय, आमलकी शर्बत, मिठी गोली किसी प्रकार से दें।

सूतिका उपचार

प्रसव से 1-1/2 माह की अवधि, सूतिका का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है, अन्यथा कई जटिल रोग शेष आयु के लिए ग्रस्त कर लेते हैं।

सर्वप्रथम बला तैल से अभ्यंग

वातनाशक आहार-विहार

पान, स्नान आदि में उष्णोदक प्रयोग करें

शीतलता से बचें।

पिघली, पिघली मूल, गज पिघली, पितक सौंठ चूर्ण थोड़ी मात्रा में आहार के साथ प्रयोग करें।

वातवर्धक, श्रम, क्रोध, मैथुन का त्याग करें।

तत्पश्चात्, सामान्य अवस्था में ग्रहण करने योग्य आहर का विस्तृत प्रवृति, देश, व्यवसाय, अवस्था अनुसार ध्यानपूर्वक चुनकर स्वस्थ रहने का प्रयास करना चाहिए।

मानव शरीर पंचमहा भूतों से निर्मित है। प्रकृति में उपस्थित पदार्थावस्था, प्राणावस्था की इकाईयां भी पंचमहाभूत से ही निर्मित है। अतः शरीर में निरंतर चल रही क्रियाओं के फलस्वरूप जो क्षय होता है। उसकी पूर्ति इन्हीं तत्वों द्वारा होती है।

मानव शरीर, शरीर के लिए अनुकूल पोषक तत्वों का चयन पांचों ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से करता है। यथा

शब्द का ग्रहण श्रवर्णेन्द्रिय (कान)

स्पर्श का ग्रहण स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा)

रूप का ग्रहण दृष्टि

रस का ग्रहण रजेन्द्रिय (जिह्वा)

गंध का ग्रहण वासा द्वारा

अतः इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा यत्नपूर्वक परीक्षित कर हितकर आहार ग्रहण करना चाहिए।

समझने की दृष्टि से सामान्य व्यवहार में प्रचलित आहार को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इन एक-2 वर्ग में सम्मिलित आहार द्रव्यों के रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव में समानता पाई गई है।

विविध आहार द्रव्यों के गुणकर्म को समझने की दो और विधियां हैं।

1. Contents in Food
2. Calorie contained in Food

Contents of Food

I. Proteins

Proteins are various combinations of amino acids.

They help to

Maintain life and promote growth in infants.

Maintain wear tear of tissues in adults

For Foebal development during pregnancy

Milk generation during loacbation

Good sources of protein are milk, milk products, oilseeds, nuts & pulses.

II. Carbohydrates

Mainly provide energy to the body. Even to burn the rab, presence of carbohydrate is very essential. It help control breakdown of proteins & probectit from toxins.

They are of 2 types

(i) Simple stages present in fruits, honey, jaggery (Monosacharider)

(ii) Polysaccharides (Complex carbohydrates) generally presents in cereals, grains, vegetables

III. Fats

Fat is a concentrated source of energy which gives twice energy in comparison to carbohydrates. Helpful in grown repair Fat is very imp. for absorbing vitamins like A, D, E and K.

Fat are umulated in tissues gives shape & cushioning effects to the body and acts as an musltor in regulating body temperature.

Vegetable Fats are from TI, Sarsoo, peanuts, Alsi, Apricrot, Soyabean, cashew.

Animal fats are from milk, ghee, butter of cow, goat, buffalo.

Polyunsaburated fatty acids present in soyabean oil, olive oil, corn oil is preferred as dietary fat. Saturated fatty acids leads to fat accumulation of edabed diseases.

Minerals

They are inorganic substances required by body in very small quantity as they are not manufactured by the body they are supplemented from outside.

They are few required in more than 100 mg. per day as Cacl, Mg, Ph, K, Na, S.

For formation grwoth of bones, teeth, hair mainly Ca Ph are required.

To maintain acid-base balance, Na K

For blood premation, Cu & Cobalt

Chlorine sodine, Flarine For formation CHCl in trace elements are Cobohl Coppermagnes moly bdenum Setenium zinc, todine, fluride.

They are required for

Forming bones, teeth and blood cells.

For assisting in chemical reactions in blood cells.

For regulating body fluids, hormones, Mg, Zn, Mn, Sulphur are required.

They are prersents in whole grains, dairy products, green vegetables nuts.

Vitamins

They are organic substances also required in small quantities but they are must for maintaing good health.

They are very imp.

in maintaining normal body metabolism
For good immunity.
For energy production by cells.
For maintaining epithebal & mueons things

Fat, soluble vitamins	**Watersoluble vitamins**
Vit. A, D, E & K	Vit B, C (Vit B_1, B_2, B_4, B_5)
Mainly presents in dairy products, dark green vegetables, vegetable oils	Whole grains cereals, vegetables.

Daily Energy required for body is full filled by carbohydrates & fats.

The physiological tissue damage is repaired by proteins

The immunity & working capacity of body is maintained by mierals & vitamins.

So al these contents are required in appropiate amount for smooth body functioning.

Calorie Contents of Food

The food eaten by us yields energy for utilisation by body and that is measured by a unit called calorie carbohydrates & proteins give in calories of energy.

Fats give in calories of energy.

Daily energy requirement of an average sedentary male of 55 kg. iks abouts 2400 kcal/day & that of a sedentary female of 45 kg is 1900 kcal/day. Balanced diet components calorie required chart from differents

Based on energy requirements of particular person and contents of food articles diet can be udged partially for persons individually.

But there are many disadvantages of this theory

Human body is quite unique in assimilating food articles for energy. growth and repair calorie thesry alone is not completed judge for it.

Vitamins food articles have different calorie content in different form of preparations as same wheat flour can be used for chapathis/puris/pizzas etc.

Vegetables & fruits have low calorie but high quality in maintenance of body immunity & purification.

Sugar has very high calorie contents but no other qualities.

Hence, judging food by only calorie theory is not complete.

आयुर्वेद के विद्वानों ने अनेकानेक आहार द्रव्यों को उनके गुण कर्मों के आधार पर विशिष्ट वर्गों में बांट दिया है। आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग संतुलित मात्रा में किया जा सकता है।

आहार वर्ग

शालिधान्य (चावल)

Very rich source of Carbohydrate (70-80%)

गुण— मधुर कषाय रस युक्त, स्निग्ध शीतल, बलकारक, वृष्य, वृहण, मूतल प्रधान फसल, हेमंत ऋतु में पककर तैयार होती है।

नवीन चावलों की अपेक्षा पुराण चावल अधिक सुपाच्य होते हैं।

हाथ कुटे तथा Pareboiled rice स्वाथ्य की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी होते हैं।

II शूक धान्य— contains Ca 68-70%, P 11-12%, minerals like Fe, Cu, Zn, Mg, Mn.

(i) **गेहूं**— मधुर रस, शीतवीर्य, वातशामक जीवनीय, भग्न संधानक होता है।

(ii) **यव (जौ)** रूक्ष, शीत, लघु, मधुर रस वात व मल कारक कफलनाशक

(iii) **शिम्बी धान्य**

Contains

P 22-24%

C 55-60%

मूंगदाल (शिम्बी धान्य में सर्वश्रेष्ठ)	कषाय, मधुर रस, शीत वीर्य, कटु विपाक, कफ-पित्त नाशक, ज्वरनाशक

तिल Fat 37-57% Piner 21-26% C 14-26%	स्निग्ध, मधुर तिक्त कषाय कटुरस, उष्ण वातनाशक, कफ पित्तवचर्धक, बलवर्धक त्वचा व केश के लिए लाभप्रद।
मसूर	लघु, शीत, रूक्ष, वातकारक, कफ पित्त रक्त विकार, ज्वर नाशक, व्रणरोपक अत्यंत संग्राही
अरहर Phy vib A_2 B_1	लधु, रूक्ष, शीतवीर्य, कषाय-मधुर रस, कफ पित्त रक्त विकार नाशक, वर्ण वर्धक
उड़द Specially rich in phosphoric acid	स्निग्ध, उष्ण, मधुर रस, गुरू, श्रेष्ठ बलवर्धक वीर्यवर्धक, वातनाशक, स्तन्यजनन, कफ पित्त कारक
चना	लघु, रूक्ष, शीत, कषाय रस युक्त गीला, भुना चना सेवन में श्रेष्ठ, बलदायक, रूचिकारक
कुलथी Contains Urease	लघु, उष्णवीर्य, कषाय रस, कटुविपाक, उष्ण मूत्रल इसके क्वाथ का प्रयोग अष्मरी, खास-कास, मेदोरोग में दिया जाता है।
अलसी Very rich in a	मधुर-तिक्त रस युक्त, स्निग्ध, गुरू, उष्ण, नेत्रों के लिए बीज नरत्लेहन, मार्दनकर, वन्य, वेहना स्थापन मूत्तल, वातहर तैल विरेचन (सौम्य) व्रब सेवक शोध हर

दालों का प्रयोग छिलके सहित करना श्रेयकर है।

शाक वर्ग

सामान्य गुण

गुरू रूक्ष

विशेष रूप से अधोवायु व मल का प्रवर्तक

शरीरस्थ रक्त, अस्थि, शुक्र धातुओं का क्षय स्मरण शक्ति, नेत्र की शक्ति केशों का नाशक होते हैं

Rich shources of vitamins & minerals

नित्य प्रयोग में आने वाले कुछ शाकों के गुण दोषों का वर्णन निम्न है—

परवल शाकों में श्रेष्ठतम	इसका फल त्रिदोष नाशक तिक्त रस प्रधान लघु, उष्ण, स्निग्ध, अग्निदीपकए दूध, वीर्यवर्धक ज्वर, रक्त विकार, कुष्ठ, कृमि ज्वर नाशक
तरोई	मधुर, शीतल, अग्नि दीपक, कफ वातकारक पित्त, ज्वर, कृमि, कफ खास नाशक
लौकी	गुरू, रूचिकारक, दूध, धातुपोषक
कुष्मांड	पेठा स्वादिष्ट, लघु, शीतल, बस्ति रोधक, मानसरोग नाशक
कुष्मांडी (कुम्हड़ी)	ग्राही, रक्त पित्त नाशक, गुरू, शीतल
ककड़ी	कच्ची ककड़ी मधुर, शीतल, गुरू, रक्त ग्राही, रूचिकारक, पित्त नाशक, मेदोहर मूत्रल, क्षार प्रधान, रक्तशोधक परमरी नाशक प्रयोग के बाद पानी न पिएं, वर्षा ऋतु में वर्ज्य
खीरा	फलों में Rich source of vit C, vit B_1 यह शोधहर, मूत्रल, शीतल
गाजर	Rich source of Vit. A, B, C, D, E मलशोधक, कृमि नाशक Mineral K (Richer Na, Fe यह ग्राही, तीक्षण, वात कफज, अंश रोगों में हितकर। वात-कफ प्रवृति वालों के हितकर पित्त प्रवृति वालों के लिए। Caroot very useful in night blindness, anemity acidosis, is good blood purifier good nourshier rol anemies
मैथी	Excellent sources of Trovy protein, calcium vitamin A, B, B_2 Methi seeds good in controlling blood sugar
पालक बथुआ मैथी	Rich in minerals like Iron, Sodium, Phosphorus and vit. A, B, C

फूलगोभी के पत्ते	Richest source of Calcium परंतु, यह सभी शाक धातुओं का पोषण नहीं करते अतः इनका प्रयोग सावधानी से करें।
टमाटर	Very good source of vit. C & vit. A. Also present, vit. B, Minerals like Potash Iron Calcium रक्त शोधक, हृदय व स्नायुओं को बल देता है दांतों को स्वस्थ मजबूत बनाते में सहायक, पाचक रसों के सुचारू बनाए रखने में सहायक
प्याज (पलांडु)	Contains a sulphur rich volabile oil, Acetic acid, phosphoric acid यह गुणों में उष्ण, कफ को निकालने वाला, बलकारक, वातहर, अग्निवर्धक है। यह श्रेष्ठ Antibiotic है। It reduces Cholesterol.
लसुन	Contains sulphur rich volable oil in which main contents are Allicin *Antibacteral) & Allicetion (Antibiotics) यह उष्ण, दीपन पाचन, वातहर कफ निवारक, उत्तम Anticeptic है। विषम ज्वर, मासिक धर्म की अनियमितता कर्णशूल में लाभप्रद है। कृमि कुष्ठ, किलास, फुफस विकार दमा नाशक
पत्तागोभी	Very rich in calcium, contains sulphurlines iron Vitamins good as a cleanser, god for bones, hair gums, beeton, effective in all bypes of ulcers, rheumatism as it is highly alkaline.
बैंगन	वातनाशक, अग्निवर्धक, रस में कटु तिक्त
Wheatgrass juice (ज्वारे का रस)	has 25% protein, vit B-complex, minerals highest provitamins A, C E & K. Contains chlorophyll essential to regenerate body. has antidursal proertre.

इन शाकों का प्रयोग–
श्रेष्ठतम– कच्चा सलाद के रूप में तथा ताजे रसों के रूप में है।
श्रेष्ठ–कम उबाल कर (steamed)/soup
साधारण–तेल व मसालो के साथ पकाकर
अलग-2 आयु, ऋतु व अवस्था के अनुसार इनका प्रयोग करके लाभ लिया जा सकता है।
यदि फल व सब्जियां वतहंदपब हों,तो बाहरी छिलका सहित ही उनका प्रयोग उत्तम है, अन्यथा नहीं

आलू	Contaijns daily digestable form of starch. Low cost subsitute for cereals 70% mois ture 20% carbohydrates, 2% protein. Rich in vitamin C.
French beans	High calorie vegetable. Good source of folic acid, vit. C. Mg.K.Su, Zn.
Cauliflower	Low calories. 90% moisture
Capsicum	93% moisture good source of Mg. vit.c
कुदरू, बैंगन भिंडी, टिंडा	Low calorie vegetable. Good source of folic acid. Ca. Na. Chloride

फलवर्ग

प्रायः सभी फल सुपक्व ग्रहण करने के योग्य होते हैं तथा ऐसे फल मधुर रस, शीत वीर्य, गुरूपाकी, स्निग्ध, मांस व वीर्यवर्धक, वात-पित्त शामक होते हैं। इनके कुछ अपवाद भी हैं जिनका वर्णन भी यथास्थान है।

प्रकृति हर ऋतु में उस-2 ऋतु में उपयोगी फल प्रदान करती है। अतः मौसमी फल पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करना स्वास्थ्यकर होता है। किसी अन्य ऋतु में उत्पन्न फल जो कृत्रिम रूप से cold storage या preservatives की सहायता से सड़ने से बचाया गया हो, वह रोगकारक होता है। साथ ही सभी अन्न, फल, साग, दुग्ध व दुग्ध विकार तभी अपने समस्त गुणों को अभिव्यक्त करते हैं तथा हानिकारक नहीं होते, जबकि उनका उत्पादन प्राकृतिक विधि

(गोबर खाद, गोमूत्र व अन्य वनस्पति से निर्मित औषधियों का प्रयोग) से उत्पन्न किया गया हो। Chemical Fertilisers, Pesticides का प्रयोग करके उत्पन्न खाद्य पदार्थ लाभ के जगह हानि कर जाते हैं।

फलों के सामान्य गुण उपर वर्णित है, इनके अतिरिक्त हरेक फल की विशेषताओं का वर्णन निम्न है–

दाड़िम	मधुर दाड़िम पित्त्नाशक अम्ल दाड़िम वातनाशक, अग्निदीपक, हृदय, मल को बांधने वाला Rich source of Vit C, B, B_2 minerals like Iron, Potassium, Zinc, Phosphorus, magnesium. Also contains carbohydrate in of glucose & fruists, so provide instant energy. Very good in anemia, dysentry, fever, cardiac trouble, dyspesia.
बेल	अपक्व-उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कफ-वात नाशक, मल को बांधने वाला पक्व-उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कफ वात नाशक, मल को बांधने वाला पक्व पचने में समय लेता है, दोषवर्धक, दूषित अपानवायु को निकालने वाला।
आम	सुपक्पव आम वायुनाशक, बलकारक very rich in carbohydrates, good nourishing tonic. Rich in Vit A, C, Calcium iron. Has laxatire divertic property.
केला	मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, वृहण गुरू। भूख प्यास, नेत्ररोग नाशक आंत्र की क्रिया सुधारती है। Has appreciable amount of Ca, Mg, Ph, Fe, Cu, Vit C, A, B, and D.
Only fully ripe Banana is edible as fruits	It contains potassium which bleaches sodium & hence is used with advantage in regulating high BP. Very high in calories, recommended to persons who are malnourshed or constipated.
जामुन	रस के कषाय मधुर अत्यंत वातकारक कफ-पित्तनाशक, मल को बांधने वाला जामुन की गुठली में रक्त शर्करा को कम करने का गुण पाया जाता है।

बेर	ताजा वात पित्त नाशक
नारिकेल	मधुर, वृष्य, वृहण, बन्य, शीतल, वस्तिशोधक है। डाब (हरी नारियल) का जल में Sodium 105, Potasium B12, Ca 29, Mg 30, Fe 0.1, Ph 37, Vit C 3.8 mg per 100 gm. यह श्रेष्ठ पोषक ज्वन तृष्णा हर, मूलजनन है सूखे गिरी में 57-74% तैल रहता है, जो अन्य तैलों की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है जिसे चर्म आसानी से सोख लेता है।
तरबूज	शीतल, मूत्रल। बीज में 20-40% तैल जो बादाम तैल की जगह उपयोग में आता है। Rich in Vibal.
खरबूज	गुरू, स्निग्ध शीतल, वृष्य, मूत्रल, पित्त वात हर रक्त पित्त, मूत्रकृच्छ नाशक मूत्रकच्छ में बीज का प्रयोग
पपीता	Very rich in Vit A (666 micro gram/100 gm) Vit. B, Vit. C, Vit. D, Ca, Ph & iron. Helps to prevent eye disorders contains papain enzyme which is helpful in digesting proteins of food.
नारंगी	फल में Vit. C, B, A प्रचुर मात्रा में होता है। यह दुर्जर, रूचिकारक हृम्य ज्वर तृपाशामक है।
सिंघाडा	शीत, पौष्टिक, ग्राही, दाह श्रम हर इसकी पेया अतिसार, आंव, प्रदर में लाभकारी। पित्त प्रकृति वाले, गार्भिणी को विशेष लाभ। शरद ऋतु में इसके भरपूर सेवन से ग्रंथिरोग, विशेषकर thyroid gland से संबंधित रोग नहीं होते।
शहतूत	गुरू, शीतल, पित्तत वातनाशक
सेव	फल, शीत ग्राही, शुकल, वात-पित्तहर, कफकर हृदय, मस्तिष्क, यकृत, अमाशय को शक्ति देता है। Rich in iron, pecbin helps in stmubtion persistalsis. It reduces cholesterol is antioxidant.
नाशपाती	कषाय, मधुर, गुरू शीतवीर्य वातकर, ज्वरहर है। पुराने आंव में अत्यंत उपयोगी useful in bladder stone.

मोसंबी	फल पैत्तिक विकार, पैत्तिक अतिसार में दिया जाता है। तण्णा, ज्वर, प्रतिश्याय नाशक छिलका त्वक विकार विशेषता मुंहासों में लाभप्रद।
इमली	बच्ची, गुरू, कफ पित्त रक्त विकार करती है, वातनाशक पक्व इलमी अग्निदीपक, गुरू, उपयोग, ज्वर में कब्ज व दाह में इसका पन्ना अत्यंत उपयोगी।
अंगूर	Revitalising fruit contains proteins, carbohydrates, Vit. A, B, K, Fe, Ca, Mn, Ch, Fl, Su, Ph. Tarbric acid protein it stimulater liver kidney, helps in elimation of toxins & purifier blood by increasing alkaline.

उपरोक्त फल ताजे, सुपक्व ग्रहण किए जाते हैं। कुछ फल सूखे अधिक उपयोगी होते हैं। जो Dry Fruits व nuts कहलाते हैं इनमें ऐसे तत्व तैल आदि होते हैं जो कि शरीर का सर्वागपूर्ण पोषण करने में समर्थ होते हैं। इनमें निम्न प्रधान है यह सभी प्रायः मधुर, स्निग्ध वण्य, वृहण होते हैं, प्रत्येक में जो विशेषता है, वह निम्न है–

चिरौंजी	शीतल, बहुत पौष्टिक, देर से पचने वाली, पित्त वात नाशक, कामवर्धक। इसका तैल बादाम या जैतून तेल के सदर्श होता है।
मखाना	यह सुपाच्य, ग्राही है। प्रसवांत दौबेल्य, वीयल्पिता, शुक्रस्राव में दूध में पकाकर है।
मुन्नका	शीतल, स्नेहन, कफ शामक, मदृ विरेचक है। कास, मूत्रदाह, विबंध में प्रयोग।
खजूर	रूचिकर, हृदय क्षत क्षय नाशक, श्रम भ्रांति, दाह, मूर्च्छा नाशक
छुहारा	अत्यंत वृष्य।
बादाम	उष्ण, वातनाड़ी बल्य, कटिशूल-प्रदर नाशक
अखरोट	आमवात, वातरक्त, जोडमाला में उपयोगी वातक्षयनाशक
अंजीर	Very nourshing for glowing children. Used by soaking overnight in water/milk. Relievs constipation.
खजूर	Excellent source of Iron. Ideal nourisher for children emaciated, aged people.

Dry fruits o Nuts का प्रयोग overnight soak करके तथा बहुत महीन पीस कर ही प्रयोग में लाभकारी होता है।

फल

अमरूद	Rich in Vit.c,. Regulates bomel movements.
Pineapple	Powerful blood purifier useful in acidosis, gouly & rheumaboid arthrities, helpful in romoving excess water, thus reterving oedema.
चीकू	every high coloried fruit. Avoided by diabeties & obeses. Useful in ulcers, colibis, dysentory.
सीताफल	Good source of Iron, Vit.c.

हरितवर्ग-आहारोपयोगी वर्ग
Class of Things useful in cooking

हरित वर्ग	
अदरक	रोचन-दीपन, वात-कफ विकारों में लाभप्रद
जंबीरी नींबू	रोचन-दीपन-पाचन, कृमिनाशक
पुदीना	Is good carminative useful in flabulence, indigestion.
वालमूली	त्रिदोषहरम्(वृद्ध मूली त्रिदोषकारक होती है)। Has diluretic errect. Used in renal stones.
अजवाइन, राई	दूध, पित्तवर्धक, शूल-आनाह-कृमिनाशक
स्याह जीरा	अस्ति व शूल रोगनाशक
हरा धनिया	रूचिकारक, अधिक कटु नहीं। रक्तवर्धक
मीठी नीम	Very good in curing digestive disorders diabeties. Rich source of Ca, Ph, Fe,Vit. A, B, B2, C.

आहारोपयोगी द्रव्य

तैलमात्र	सामान्यतः सभी तैल रस-मधुर, कटुरस-कषाय, सूक्ष्म, उष्ण वीर्य, चवायि होते हैं। दोषों में पित्तवर्धक, वातकफनाशक त्वचा के लिए हितकर, बलकारक, अन्य औषध द्रव्यों के संयोग से सर्वरोगनाशक, कुछ सामान्य क्रम में प्रयुक्त तेलों की विशिष्टता
सरसों का तेल	रस में कटु, उष्ण वीर्य, रक्त व पित्त को दूषित करने वाला किंतु कफ, थूक, वात, कंडू, कोढ़-नाशक
तिल तैल	गुण स्निग्ध, विशद, स्थिरता-बलकारक, रस व पाक में मधुर, सूक्ष्मगुणयुक्त, लेपन, नेत्र
मेथी	बाहर के आवरण में वातनाशक गुण अंदर वाला भाग पुष्टि तत्व वर्धक
अरंडी का तैल	रस में मधुर, पाक में गुरू, कफवर्धक वातरक्त, गुल्म, हृदयरोग, जीर्ण ज्वर नाशक
प्रियाल (चिरौंजी) तैल	रस में मधुर, गुरूपाकी, कफवर्धक वातज, पित्त, द्वन्द्वज रोगों में हितकारी
अलसी तैल	रस में मधुर अम्ल, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, वातविकारों में हितकर, रक्त पित्त नाशक
हींग	कटु रस, उष्णवीर्य, लघु, अग्निवर्धक पाचन, शूलहर, वात कफज विकारों में हितकर
काली मिर्च	लघु, अत्यंत उष्ण नहीं, रूचिकारक, छेदन शोषण गुण युक्त, कफ वातनाशक
जीरा	वातानुलोमक, स्तन्यजनन। आध्मान, उदाशूल, जीर्णज्वर, अतिसार में उपयोगी।
धनिया	लघु, स्निग्ध, त्रिपोषहर, तृष्णा, दाह, वमन नाशक
सौंफ	रीपन पाचन दाहशमन मूत्र विरेचनीय
मैथी	वातकफ नाशक, ज्वरहर

कृतान्त वर्ग (Cooked Foods)

उपरोक्त वर्णित, विविध खाद्य पदार्थो को आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है। हरेक विधि की अपनी-2 विशेषता है, जो कि निम्न है।

Raw Fruits & Vegetables

खाद्य पदार्थ (फल-सब्जी) को ही कच्चे रूप में Juice/Salad के रूप में खाया जा सकता है, जिसके निम्न लाभ हैं–

कच्चे फल-सब्जी में Carbon content अच्छा होता है, जिससे यह रक्त में उपस्थित विजातीय द्रव्यों (Toxins) को स्वयं में घुलाकर शरीर से निष्कासन के लिए तैयार करते हैं। कच्ची सब्जीयों के प्रयोग यकृत, गुर्दो के लिए regenerator का तथा शरीर के प्राण कोषों के लिए Builders का काम करते हैं। इनमें Alkaline elements अधिक होते हैं, जिससे शरीर में acid alkaline balance बना रहता है तथा अनेक रोगों से सुरक्षा हो जाती है।

इनमें सभी तत्व Vitamins, mineral, trace elements, enzymes, natural sugar आसानी से पचने वाले form में होते हैं। Organic minerals calcium potasium silicon भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है, जो प्राणकोषों की premate ageing को रोकता है।

फल व सब्जियां मौसमी ही प्रयोग करें क्योंकि प्रकृति हरेक ऋतु की आवश्यकतानुसार तत्व वाली फल व सब्जियां, स्वस्थ रहने हेतु प्रदान करती हैं तथा Cold storage की फल-सब्जियां स्वाद हीन हो जाती है।

इनमें प्राकृतिक रूप से अनेक औषधीय तत्व रहते हैं जैसे– लहसुन, प्याज, हल्दी स्वयं में antibiotic होते हैं। करेला nsulin regulator होता है यदि सभी फल व सब्जियों को जब उपयोग करना हो, तभी उन्हें छीलें व काटें। बहुतल पहले से छिल-काट कर रखने पर oxidale हो जाता है। जो हितकर नहीं है।

Cooked Food

खाद्य पदार्थों को अग्नि देकर पकाने के निम्न लाभ हैं–

– खाद्य पदार्थों की cell walls को मदृ करना, जिससे वे सुपाच्य हो सके।

– खाद्य पदार्थों में किसी तरह का toxin या Bacteria हो तो वह नष्ट हो जाए।

– पकाने से खाद्य पदार्थ के रस, गंध आदि में वृद्धि होती है।

पकाने की अनेक विधियां हैं–

Steaming, Bioling,. Roasting, Frying, Grilling, Micromangs baking etc.

Steaming means coojking by moist heat इनमें Steaming श्रेष्ठ विधि है। इससे सारे nutrients, presereved रहते है। Bioling श्री श्रेष्ठ विधि है। Boiling में कुछ जल ऊपर से डाला जाता है।

खाद्य पदार्थों को जिस विधि से पकाया जाता है तथा जिन खाद्य पदार्थों के साथ पकाया जाता है उससे उनके गुणों में परिवर्तन होता है।

चावल बनाने की विधियां–

मंड/पेया (चावल में उससे 16 गुना जल डालकर पकाया हुआ)

अत्यंत सुपाच्य, लघु, अग्नि प्रदीपक, वातानुलोमक, स्रोतसो में मदुता उत्पन्न करने वाला स्वेदन।

स्नेहपान, शोधन, लंघन अथवा किसी रोग से क्षीण हुए शरीर वाले लोगों के लिए अत्यंत हितकारी

ओदन (अच्छी प्रकार जल से धोकर कुछ फूलने के बाद 5 गुने जल में पकाने के पश्चात् मांड निकालकर गरम-2 सेवन करें। यह पच्य, संतर्पण, लघु, रोचक होता है।

चावलों को थोड़ा भून कर इसी विधि से बनाया आंत कफज विकारों में लाभप्रद

किंतु बिना धोये, बिना मांड निकाला ठंडा भात गुरू, कफकारक होता है।

खीर (शुद्ध आटे औटाये दूध में धृतभर्जित चावल डालकर पकाकर चीनी डालें) यह गुरू, वृहण, बलवर्धन, पित्त वात हर होती है।

लाज सत्तू (धान के लावा को भूनकर) यह लघु, कषाय, मधुर

गेहूं से बने व्यंजन

रोटी– यह गुरू, कफकारक, वातनाशक, वृहण, बलकारक होती है।

जौ की रोटी– लघु, विशद, मधुर रस, कफनाशक वायु, मल, शुक्र को करने वाली।

दाल– शमी धान्य (मूंग, उड़द, अरहर) को दल देने से दाल बनती है। दाल को जल में पकाकर, सेंधानमक, अदरक, हींग, धृत से मिला कर प्रयोग करें। यह विशेषतः रूक्ष, शीतल विष्टभकारी वातकारक है।

दाल को कुछ भूनकर पकाने पर यह लघु हो जाती है।

खिचड़ी– बराबर मात्रा में दाल व चावल मिलाकर जल में पकाई हुई नमक, अरदक, हींग से सिद्र की हुई। यह बलकारक, गुरू, शुक्रजनक होती है।

खीर– धुतभर्जित चावल को दूध व चीनी डालकर पकाई हुई। वृहण, बलवर्धक, दुर्जर, पित्त, रक्तपित्त, वातहर।

चने/मूंग/उड़द दाल के पापड़–

किंचित गुरू, रूक्ष, रूदा, पाचक, रोचक, अग्निदीपक

मूंग बटी– लघु, पच्य, रूचिकारक

कढी (बेसन की)– लघु, दीपक पाचक, पित्त को प्रक्रपित करने वाली, कफ वात विबंध नाशक।

जौ के सत्तू– लघु, शीतल, सारक, रूक्ष, लेखन, कफ पित्त नाशक

खील के गुण– मधुर, लघु, शीतल, रूक्ष, बलकारक, प्रमेह भेद तृषा दूर करने वाली।

अनेकानेक आहार द्रव्यों के कई प्रकार से संयोग आवश्यकतानुसार किए जा सकते हैं–

आहार द्रव्यों के संयोग पकाने की विधि, पकाने की अवधि के अनुसार खाद्य पदार्थों के गुण धर्म परिवर्तित हो जाते हैं।

खाना बनाने को एक कला कहा गया है। पकाते समय इस बात का ध्यान रहे कि आहार द्रव्यों के पौष्टिक तत्व यथावत रहें। बल्कि उनमें गुणांतरधान हो।

पकाने में जल, अग्नि, तेल/घी, समालों का यथोचित प्रयोग करें।

बहुत अधिक जल में आहार द्रव्यों को भिगाये रखने, बहुत उबाल कर जल निथार देने से बहुत से तत्व नष्ट हो जाते हैं।

वैसे ही Roasting Deep Frying Grilling, Baking बहुत अधिक करने पर आहार निःसत्व हो जाते है। अर्धपकव या अधिक पक्व/जला हुआ आहार भी हानिकारक होता है। मसालों का उचित प्रयोग आहार को न केवल रूचिकर बनाता है, बल्कि आहार को वीर्य भी प्रभावित होता है।

जैसे सौंठ हल्दी, मेथी यह उष्ण वीर्य तथा सौंफ, दालचीनी यह शीतवीर्य होते हैं।

आहार द्रव्यों का संयोग अहितकर होता है, जैसे–

दूध (मधुर विपाक, शीतवीर्य) तथा कुलत्थ (अम्ल मोठ, उड़द विपाकी, उष्ण वीर्य)

दूध व कटहल (दोनों अत्यंत मधुर विपाक वाले व शीत वीर्य होने से अत्यंत कफ प्रकोपक

शहद व धृत कम मात्रा में विरोधी है।

दही को गरम नहीं किया जाना चाहिए।

सत्तू का सेवन रात्रि में नहीं करें।

दूध के साथ अम्ल द्रव्य जैसे आम, बिजौरा नींबू, दाड़िम, नारियल, अखरोट

शीतकाल में शीतल-रूक्ष तथा उष्णकाल में उष्ण वीर्य व कटुरस प्रधान आहार विरूद्ध है।

शीतवीर्य द्रव्य को उष्ण वीर्यद्रव्य के साथ मिलाकर

धृत आदि स्निग्ध पदार्थों के ऊपर जल पीना।

दुग्ध व गुग्ध विकार

(खंड 1 का शेष)

गोदुग्ध के कुछ विशिष्ट गुण

जागंल

आबूप — दूध उत्तरोत्तर गुरू

पर्वतों पर चरने वाली गाय

केवल चारा खाने वाली गाय का दूध रोगियों के लिए

चारा + अन्न खाने वाली गाय का दूध गुरू, कफकारक बलदायक, स्वास्थ्य लोगों के लिए हितकर।

साधारण रूप से औटाया दूध– कफ वातनाशक

औटा कर शीतल किया– पित्तनाशक

दूध में 1/2 जल मिलाकर औटाया– अत्यंत लघु व जल डाल पूरा जलकर दूध ही शेष रह जाए।

बिना जल के, दूध को औटाया जाए– गुरू, स्निग्ध, वीर्य बलवर्धक

दूध में खांड डाली हो– कफकारक, वातनाशक

दूध में बूरा डाली हो– त्रिदोषनाशक, शुक्रजनक

दूध में गुड़ डाली हो– कृच्छ नाशक, पितत्त कफ प्रकोपक

प्रातःकाल दूहा दूध– गुरू, शीतल

सांयकाल दूहा दूध– लघु, वात कफनाशक

दिन के पूर्वभाग में दुग्धपान– वीर्यवर्धक वृहण, पअक्निपाक

दिन के मध्यान्ह में दुग्धपान– बलकारक, कफपित्त हर

दिन के रात्रि में दुग्धपान– दोषों का शामक

काली गाय का दूध	अधिक गुणकारी, वात नाशक
पीली गाय का दूध	वित्त व वातनाशक
सफेद गाय का दूध	कफकारक, गुरू
ला/चितकबरी गाय का दूध	वातनाशक

दुग्धफेन के गुण

त्रिदोषनाशक, तत्का तृप्तिदायक लघु, अतिसार, जीर्ण ज्वर, अग्निमोंध में हितकर

निन्दित दूध

विवर्ण, विरस, खट्टा, दुर्गन्धयुक्त फटा हुआ। तुरंत जिसे कच्चा हुआ हो, जिसके बच्चे मर गए हों, ऐसी गाय का दूघ प्याज्य होता है।

मलाई के गुण– गुरू, शीतल, वीर्यवर्धक, कफ बल शुक, उत्पन्न करने वाली, पित्त रक्त वात हर

तक्रपिण्ड (पनीर) के गुण— गुरू, कफकारक, बृंहण, कफ कारक, वात-पित्तहर, अनिद्रा विद्रधि में अत्यंत लाभप्रद

मोरट (पनीर बनने के बाद शेष जल) यह बूरा युक्त लघु, बलकारक, प्यास दाह रक्तपित्त, ज्वर हर।

देन्दादिन के आहार में हम यदि पिम्नोक्त थोड़े-2 परिवर्तन कर लें, तो आहार काफी स्वास्थ्यप्रद हो जाए—

कच्चे व उबले सब्जी, फल, अंकुरित अनाज

आनाज Less Polished oragnic)

गाय का दूध

तेल में सरसों/तिल तेल

Malted drinks

चाय/काफी की जगह हर्बल टी/ग्रीन टी निम्न वस्तुओं का प्रयोग avoid करें।

Stored, tinned, readymade food with preservatives & colory agents, aerated drinks

बहुत अधिक मसालों की प्रयोग। मसालों का प्रयोग अपनी प्रकृति तथा ऋतु के अनुसार करें।

सात्विक आहार में ताजे फल-सब्जियां, दूध व दूध उत्पाद, अनाज (दाल, रागी, गेहूं, चावल) उपयुक्त मात्रा में, उचित मसालों व तैल/घी से पकाया हुआ तथा जिसे सद्भावपूर्वक पकाया गया हो, परोसा गया हो और ग्रहण किया जाए।

आहार ग्रहण करने के नियम

जितना महत्वपूर्ण आहार द्रव्यों को प्राकृतिक/जैविक खेती द्वारा उत्पादन है उतना ही महत्व सही विधि से आहार द्रव्यों को आवश्यकतानुसार पक्व/अपक्व स्थिति में इस प्रकार ग्रहण करना है कि उनके तत्व यथावत रहें।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त आहार ग्रहण करते समय के कुछ ध्यान देने योग्य तथ्य हैं, जिनका पालन करके हम आहार द्वारा सम्यक् पोषण प्राप्त कर सकते हैं।

भोजन करने के लिए पवित्र, मनोनुकूल स्थान पर शांत चित्त होकर, सभी इच्छित भोजनोपयोगी सामग्री से युक्त होकर बैठें। भोजन के पूर्व व पश्चात् कम से कम 15 min तक विश्राम करें, श्वास की गति सामान्य होने दें। इस प्रकार किया भोजन ही सम्यक् प्रकार से पचता है।

भोजन करते समय

कुक्षि का 1/3 भाग ठोस पदार्थों से

कुक्षि का 1/3 भाग द्रव्य पदार्थों से

पूर्ण करें तथा 1/3 भाग रिक्त रखें, दोषों की अति के लिए। थोड़ी भूख शेष रहे, तभी भोजन से हाथ खींच लें।

हीन मात्रा में भोजन अतृप्ति कारक, आयुनाशक, शरीर मन बुद्धि इन्द्रियों को हानि पहुंचाने वाला होता है तथा 80 प्रकार के वातविकार उत्पन्न करता है।

अति मात्रा में किया हुआ भोजन त्रिदोष प्रकोपक होता है। शूल, आनाह, अग्नि वैष्म्य, कटिग्रह, अतिसार, समन, अरोचक आदि रोग करता है। अतः मात्रा युक्त भोजन ही सर्वश्रेष्ठ है।

भोजन पूरे मनोयोग से करें। अतिशीघ्र भोजन करने पर भोजन की स्थिति ठीक प्रकार से अमाशय में नहीं हो पाती, जिससे वह अवसादकारक होता है। अति विलंब से भोजन करने पर बहुत खाने पर भी पुरुष तृप्त नहीं हो पाता तथा भोजन का पाक विषम हो जाता है।

पूर्व खाये हुए भोजन के पच जाने पर ही पुनः भोजन करें। अत्यंत भूख लगने पर भी तथा बिना मल-मूत्र त्यागे भोजन न करें। भोजन का समय नियम रखें। भोजन हमेशा ताजा उष्ण ही करें। इससे अग्नि दीप्त रहती है, वायु का अनुलोमन होता है। उष्ण से तात्पर्य शरीर ताप से किंचित उष्ण हो। अधिक गरम या अधिक ठंडा दोनो हानिकारक हैं

भोजन सही मात्रा में स्निग्ध होना चाहिए, इससे भोजन का पाचन ठीक से होता है। भोजन में अंतर कम से कम 3 घंटे, अधिक से अधिक 6 घंटे का रखें। भोजन में पूरे 6 रसों का साम्मिश्रण होना आवश्यक है। भोजन के पूर्व मधुर रस, मध्य में अम्ल लवण रस, अंत में कटु तिक्त आदि।

प्रातःकाल (6 a.m. - 10 a.m.) कफ काल में अत्यंत अल्प, द्रव्य भोजन।

10-2 p.m. पित्त काल में पूर्ण भोजन

2-6 p.m. फल/फलों का का रस।

कफ काल शरीर की सफाई का काल होता है, इस काल में इस कार्य में सहयोगी पदार्थ जैसे फल/सब्जी इनका रस, भिगे हुए मुनके अंजीर इनका सेवन करें, अंकुरित अन्न सप्ताह में 2-3 बार जरूर सेवन करें।

पित्त काल में किया भोजन आसानी से पच जाता है।

तथा वातकाल में अल्प, स्निग्ध भोजन/द्रव पदार्थ लें, जिससे वात प्रकोप न हो।

भोजन के 1/2 घंटा पूर्व सैंधव आर्द्रक लें (त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक)

भोजन के पूर्व दाडि आदि फल

उसके बाद पेय आदि पदार्थ, अंत में विविध भोज्य व अक्ष्य पदार्थों का सेवन करें।

हेमंत, शिशिर आदि ऋतुओं में स्निग्ध, उष्ण भोजन प्रातःकाल ही कर लें, ग्रीष्म व प्रावह ऋतुओं में द्रव, लघु, शीतल भोजन अपरान्ह में सेवन करें।

शरद व वसंत ऋतुओं में मध्याह्न में भोजन करें।

भोजन करने के बाद ताम्बूल पत्र (दूध) के साथ कटु, तिक्त, कषाय द्रव्य जैसे लोंग, दालचीनी, इलायची आदि लें। इससे कफ की अतिवृद्धि नहीं होती तथा मुख स्वच्छ हो जाता है।

भोजन के बाद शिर, कमर सीधा करके कुछ समय व्रजासन में बैठे। फिर 100 कदम जैसे पैदल चलकर कुछ देर वामपार्श्व लेटकर मनोनुकूल रूप, रस, गंधादि का सेवन करें।

गुरू पदार्थों को आधी तुप्ति तक तथा लघु पेय पदार्थों को पूर्ण तृप्ति तक सेवन कर सकते हैं।

आटा चोकर युक्त प्रयोग करें। हाथ की चक्की का पिसा अधिक श्रेष्ठ है।

गेहूं में जौ, चना, सोयाबीन का आटा मिला लेने से वह अधिक सुपाच्य व पौष्टिक होता है। रोटी बनाते समय आटे में मेथी, बथुआ, धृतकुमारी का

गूदा, फूलगोभी का हरापत्ता, अलसी बीज पीस कर, एरंड तैल श्रेयस्कर होता है।

भोजन में रंग केसर, हल्दी, धनिया आदि का ही प्रयोग करें। कृत्रिम रंग कैंसर सहित अनेक घातक रोगों के उत्पादक हैं।

फल-सब्जी की मात्रा गेहूं, चावल, दाल से 3 गुनी रहे।

शाम का भोजन शयन से 2-3 घंटे पूर्व ही कर लें।

भोजन में एक बार में एक तरह का अनाज गेहूं या चावल लेना अधिक उपयुक्त है। दाल हमेशा छिलके सहित, चक्की की दरी हुई, पर्याप्त जल डालकर पकाई ही लें।

पूरे दिन में अलग-2 समय में आहार की योजना इस प्रकार हो कि सभी तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाएं।

भोजन बनाने हेतु लौहे, पीतल या मृत्तिकापात्र का उपयोग श्रेष्ठ है।

भोजन करने हेतु पात्र

स्वर्णपात्र-दोषनाशक, पथ्य, दृष्टिप्रद

रजतपात्र-पित्तहरण, कफ-वातनाशक, दृष्टिप्रद

कांसे का पात्र-बुद्धिप्रद, रक्त-पित्तनाशक

पीतलपात्र-उष्ण वीर्य, वातनाशक, रूदानाशक, कृमि-कफनाशक

लोहे का पात्र/कांचपात्र-शोध, पांडु-कामलानाशक बलकारी

पत्तों का पात्र-अग्निदीपक, रूचिवर्धक, विपनाशक

जलपात्र-जल के लिए ताम्रपात्र सर्वोत्तम, मिट्टी, कांच, स्फटिक, वैदूर्य, रजत का जलपात्र भी उत्तम है।

भोजन में सबसे पहले मधुर रस प्रधान, धृत युक्त कठिन भोजन (रोटी, पूडी आदि)

मध्य में अम्ल, लवण रस प्रधान मृदु पदार्थ (दाल भात) अंत में द्रव पदार्थ (मठ्ठा या दूध) लें

रस में कटु, तिक्त, कषाय रस जैसे ताम्बूल, सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लौंग, जायफल, इलायची, हरड़, खैर-चूना युक्त पान का सेवन भोजन के बाद आचमन कर इसका सेवन करें।

जब बहुत तेज प्यास लगी हो तो भोजन नहीं करें, अन्यथा गुल्म हो

जाता है। तथा जब बहुत भूख लगी हो तो पानी पीने पर जलोदर रोग होने की संभावना रहती है।

भोजन के आदि, मध्य व अंत में जल पीने पर क्रमशः मनुष्य शरीर कृश, सम व स्थूल होता है। भोजन के 1/2 घंटे पूर्व या 1/2 घंटे बाद जल पीयें। अतिशुष्क भोजन हो तो बीच-2 में द्रव पदार्थ लें।

भुक्ताहार ठीक प्रकार से परिपक्व हो गया है। इसके लक्षण होते हैं- शुद्ध उद्गार, चित्त में उत्साह, शरीर में हल्कापन, सम्यक् रूप से भूख-प्यास का लगना, मल-मूत्र त्याग समय पर होना।

यदि उपरोक्त लक्षण न हों तथा अजीर्ण होतो दुबारा भोजन न करें तथा सोंठ, सेंधा नमक लें।

भोजन के पहले व बाद में भी खड़ाउं धारण करना, नेत्रहितम् भोजन के बाद आचमन करके हथेलियों को परस्पर रगड़ कर दोनों हाथों को नेत्रों पर लगाने से भी नेत्ररोगों का नाश होता है।

आयु के अनुसार आहार

बाल्यावस्था(जन्म से 16 वर्ष तक)

इस के प्रारंभ में ही शिशु आहार महत्वपूर्ण तथ्य निम्न हैं

प्रकृति की यह व्यवस्था है कि माता-पिता की जब तक शारीरिक-मानसिक तैयारी बालक के सम्यक् पालन-पोषण की नहीं होती, तब तक या तो गर्भाधान ही नहीं हो पाता या गर्भपात हो जाता है या जन्म लेकर बालक की मृत्यु हो जाती है। अतः माता-पिता दोनों को ही 1 वर्ष पूर्व से ही गर्भधारण हेतु शरीर का सम्यक् शोधन करके सम्यक् आहार-विहार करना चाहिए।

गर्भधारण के बाद माता के भोजन में सभी तत्व पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए ताकि रक्त मात्रा व पोषण दोनों में पर्याप्त रहे ताकि गर्भ का सम्यक् पोषण हो। भोजन में भीगे हुए Dry fruits/Nuts /हरी पत्तेदार सब्जियों, मौसंबी फल, दूध व दुग्ध विकार हो, स्नेह भी संतुलित मात्रा में हो।भोजन बहुत अधिक न करके पोषक भोजन करें। इस प्रकार बालक के स्वास्थय की नींव अच्छी पडती है तथा प्रसव भी ठीक प्रकार से होता है।

नवजात शिशु के लिए प्रथम

6 माह तक स्व माता का दूध उसके पोषण के लिए सर्वोत्तम होता है।

गर्भावस्था व स्तनपान कराने के समय माता के सही आहार-विहार से दूध पर्याप्त मात्रा में आता है। किंतु यदि कुछ कमी पड़े तो गाय के दूध से पूर्ति की जानी चाहिए। स्त्री दुग्ध की अपेक्षा गाय के दूध में (calacium Tron Vit. B complex) कुछ अधिक पाया जाता है किंतु माता के दूध में बालक हेतु रोग निवारक तत्व व दूध का पाचन अभिशोषण करवाने वाले तत्व होते हैं। माता का पहला दूध आंतों को उत्तेजित करने के लिए काफी रेचक है। 2-4 माह के बाद शिशु को (Boiled water) भी बीच-2 में दें। रात्रि में ज्यादातर दूध न देकर कुनकुना पानी दें। दूध की मात्रा व ठतमुनमदबल के बारे में सामान्यतः शिशु ही संकेत दे देता है। एक बार में बालक जीभर कर आहार लें कर जब उपेक्षा करने लगे , तो जबरन और आहार न दें। फिर उचित अंतराल के बाद जब शिशु संकेत दें, तब दुबारा आहार दें। यदि अस्वस्थतावश शिशु कुछ आहार कम कर दें तो रोग निवारण का उपाय करें तथा आहार को एकदम से बढ़ाने/पूर्ववत करने का प्रयास न करते हुए कुनकुने पानी की मात्रा बढ़ा दें। इस प्रकार शिशु की आहार की मात्रा निश्चित की जा सकती है, जो हर महीने ऋतु व उसके स्वास्थय की स्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तित हो जाती है। जन्म के 2 माह बाद से निम्न औषधियों का मिश्रण (घुट्टी) शिशु के कई रोगों से बचाकर रोगनिवारक शक्ति प्रदान करती है—

	भाग
आंवला	20
हरीतकी	1
विभीतक	1
मरीटा	4
सौंठ	2
पिपली	2
लौंगादि	6

(लौंग, बडी व छोटी स्ला, जायफल, जावित्री)

तुलसी	2
ब्राह्मी	4
वेरालोचन	4

छहारा	10 g
बाल छड़	3 g
छोटी पिप्पली	5 g
बादाम	10 g
जायफल	5 g
कस्तूरी गोली	5 pieces

बच्चों को बहुत अधिक या बार-बार न खिलाएं। बहुत अधिक चीनी वाले गरिष्ठ भोजन न देकर ताजे फल, सलाद, पूर्णन्त से बनी चीजें, दूध व दुग्ध विकार दें। शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप व पर्याप्ति निद्रा भी बालकों के पोषण के लिए अति आवश्यक है।

1½- 2 वर्ष तक बच्चों की मालिश सही प्रकार से मौसम के अनुसार 1-2 बार की जानी चाहिए। मक्खन/तिल तैल/ बला/ लाक्षादि/नारियल तैल आणकाल सरसों तैल/धृत कुमारी का गूदा शीतकाल में प्रयोग कर सकते हैं।

स्नान के पहले बेसन/चोकर युक्त आटे के उबटन का प्रयोग अच्छा है।

'दंत प्रस्फुटन' प्रायः 8 वें माह से प्रारंभ होती है तथा इसके पूर्व निकलने वाले दांत मजबूत नहीं होते। शिशु के दांत मजबूत हों, इस हेतु गर्भावस्था के 7वें-8वें सप्ताह से ही माता को आहार में Calcium Vit. D तथा Vit C enriched foods की मात्रा विशेष रूप से बढ़ा देनी चाहिए।

बच्चे के मसूढ़ों को प्रतिदिन नकम मिले गरम जल/घी में डुबाये मुलायम कपड़े से साफ करके शहद + टंकण भस्म से मालिश करें। 8-10 माह से उसे फल/सब्जी का टुकड़ा कुतरने को दें, इससे दांतों की massage भी हो जाती है, साथ ही फल-सब्जियों का कुछ रस भी अंदर चला जाता है।

नेत्रों के स्वास्थ्य हेतु आहार में Vit A, D, E जो कि पीले फल, दूध, मक्खन, अंकुरित अनाज में होता है, उसका सेवन पर्याप्त मात्रा में हो। नेत्रों की स्वच्छता पर भी ध्यान रहे।

बाल्यावस्था, कफ दोष की प्रधानता वाली अवस्था है। अतः शरीर निर्माण हेतु आवश्यक तत्वों की पर्याप्त पूर्ति होती रहे, इस बात का ध्यान रखें। किंतु, कफ प्रकोपक आहार-विहार जिसमें मात्रा से अधिक आहार प्रमुख कारण है, उससे बचना चाहिए।

युवावस्था (16-40/50 वर्ष)

यह अवस्था बल, ओज, वर्ण की सर्वाधिक उत्कृष्टता की अवस्था होती है। इसमें पित्त दोष की प्रधानता रहती है। शरीर निर्माण पूर्ण होकर, नए मानव शरीर की रचना हेतु समर्थता आ जाती है। इस अवस्था में

श्रम पर्याप्त हो

पित्त प्रकोपक आहार-विहार (चाय, मिर्च-मसालों, तली-भुनी चाजों) की अधिकता न हो।

उपकार कार्य हेतु बाल्यावस्था में जो शिक्षा-दीक्षा हुई हो, उसका सदुपयोग करने हेतु श्रेष्ठ समय।

वृद्धावस्था (50/60 वर्ष के बाद)

अव शरीर में Carbabolism बढ़ जाता है, नए शरीर उत्तकों के निर्माण की गति कुछ धीमी हो जाती है।

इस अवस्था में वातदोष की प्रधानता रहती है तथा पाचकाग्नि कुछ क्षीण हो जाती है। इस अवस्था में

श्रम व विश्राम का संतुलन रहे।

वात प्रकोपक आहार (मटर, दाल व दाल से बनी वस्तुएं, जौ, शाकों में कटहल, भिंडी आदि) व वात प्रकोपक विहार (अत भाषण, सैर, व्यायाम का त्याग करना चाहिए, अतिशीत से बचना चाहिए।

स्नेह (तिल तैल, गाय का घी) का बाहृय आभ्यांतर प्रयोग व मधुर रस का अधिक प्रयोग (फल व दूध) के रूप में करें।

शारीरिक प्रकृति अनुसार आहार-विहार

	वातज	पित्तज	कफज
मूलभूत सिद्धांत इन प्रकोपक आहार-विहार के विपरीत आहार-विहार दोषों को समावस्था में रखते हैं।	वात के गुण शीत, रूक्ष, लघु, सूक्ष्म, विशद होता है। इसकी अधिकता वात प्रकोपक है।	पित्त के गुण, उष्ण, स्निग्ध, द्रव इन गुणों की प्रधानता वाले आहार-विहार पित्त प्रकोपक है	कफ के गुण स्निग्ध, शीत, मृदु, गुरू, पिच्छिल है। इन गुणों से संमन्न आहार-विहार का अधिक सेवन कफ प्रकोप करता है।
दोषों को संतुलित करने वाले आहार	उष्ण, स्निग्ध शक व षमी धान्य दुग्ध व दुग्ध विकार (उष्ण) तिल तैल का प्रयोग मधुर, अम्ल, लवण रस	शीत प्रधान आहार मधुर, तिक्त, कषाय रस ताजे फल-सब्जी (पपीता व टमाटर को छोड़कर) Vit A, B-complex, Cox Iron थोड़ा ज्यादा चाहिए। घी का प्रयोग शीत गुण प्रधान spices जीरा, सौंफ, दालचीनी, पुदीना सभी मीठे फल	लघु, कम स्निग्ध, उष्ण spicy food low Rabs proteins कटु, तिक्त, कषाय रस
फल	मीठे फल, केला, नारियल खजूर, बादाम, अंजीर, आम, संतरा, पपीता, किशमिश नारियल गिरी		फलों में सेव, अनार, बासमती

	चिरौंजी, चारों मगज		
सब्जी	पकी हुई सब्जियां, Onions sweet potato, कद्दू, गाजर	Brocalli, cabbages fresh corn, Letbuces	हरी पत्तेदार सब्जियां लहसुन, mushrooms
शूकधान्य	rice, oats	pobabres, cucumber barrey, oats, rice	karley, colay, millet
शमी धान्य	उड़द दाल, मसूर दाल, अरहर दाल	चना दाल, मूंग दाल	काला चना, मटर

तेल	सभी तेल, विशेषता तिल तैल	नारियल, जैवन, soya oil तिल तैल	Almond corn bill (on small amounts)
spices	अजवाइन, हिंग, तेज पत्ता, इलाइची लौंग, लहसुन, प्याज, हल्दी	जीरा, धनिया, सौंफ, दालचीनी पुदीना	हिंग, तेजपत्ता, राई लहसुन, अदरक, खसखस
दोष को संतुलित करने वाले विहार	विश्राम, ध्यान, कर्णत्रिय, संगीत प्रणायाम, Massage	ठंडे स्थानों पर रहना, सीधी सूर्य किरणों से बचना	व्यायाम
दूध	गोदुग्ध, माहिषदुग्ध, मट्ठा	ताजा मक्खन, गोदुग्ध, (बिना नमक) बकरी का दूध	बकरी का दूध, गोदुग्ध मट्ठा
दोष प्रकोपक आहार	Frozen Dried Raw Food (अधिक मात्रा में)		
फल	सेब, नाशपाती, अनार, तरबूज	खट्टे फल, सेब, पपीता, संतरा	केला, नारियल, आम, तरबूज
सब्जी	सभी प्रकार की गोभी, पत्तेदार सब्जिशं, मटर, टमाटर, आलू	लहसुन-प्याज, सरसों, मैथी का साग, पालक, मूली, अदरक काले तिल, सरसों, अजवाइन, अमचूर, खसखस, जायफल, हिंग, लौंग मैथी	काजू, नारियल गिरी शक्करकंद, पका हुआ कद्दू आलू अरबी अमचूर, इमली
दूध व दुग्धविकार	बकरी का दूध	Salted Bubber, Sour cream, yogurt	Bubbey all kinds of cheeses yougurt
तैल		बादाम, Corn oil Almonds aparot oil,	नारियल, जैतून, Apricot oil] soya oil

स्वदेश के अनुसार आहार

जलवायु के अनुसार देश 3 प्रकार के होते हैं।

जांगल उदा. राजस्थान— रूक्ष जलवायु। यहां उत्पन्न मानव शरीर पशु, पक्षी, वनस्पति सभी लघु, रूक्ष वात पित्त की प्रधानता वाले होते हैं। जांगल प्रदेशों में रूक्ष व तीक्ष्ण पदार्थों का अधिक सेवन दोष प्रकोपक होता है। यहां मधुर, द्रव्यों का तथा किसी न किसी स्नेह का प्रयोग विशेष हितकारी होगा।

आनूप उदा. केरल— स्निग्ध जलवायु। जलस्रोतों की अधिकता रहती है। मानव व पशु शरीर कफ प्रधान वनस्पतियां गुरू, स्निग्ध, शीत प्रधान होती है।

आनूप देशों में स्निग्ध, शीत द्रव्यों का बहुतायत से प्रयोग दोष प्रकोपक है। लघु रूक्ष कटु तीक्ष्ण उष्ण द्रव्यों का प्रयोग भोजन व औषध के रूप में प्रयोग करते रहने से दोष संतुलन बना रहता है।

साधारण देश उदा. मध्यप्रदेश— जलवायु नातिरूक्ष त्वरति स्निग्ध यहां संतुलित आहार लाभप्रद रहते हैं।

व्यवसाय अनुसार आहार

इसमें मुख्य विभाजन हैं—

1. शारीरिक श्रम की अधिकता— कृषक, श्रमिक आदि लोग जो दिन का अधिकांश भाग शारीरिक श्रम में बिताते है। उनको आहार में Carbohydrates, Fat] Proteins पर्याप्त मात्रा में चाहिए तथा नाश्ता व रात का भोजन (7 बजे तक) अच्छी मात्रा में लें। दोपहर का भोजन हल्का रखने पर शारीरिक श्रम में बाधा नहीं आती।

2. मानसिक श्रम की अधिकता— विद्यार्थी, चिकित्सक, शिक्षक आदि लोग जो शारीरिक श्रम इतना अधिक नहीं करते तथा मानसिक श्रम की अधिकता होती है। उन्हें तीनों समय संतुलित, हल्का भोजन ही करना चाहिए। भोजन में गोदुग्ध, गोधृत, ताजे फल व ताजी सब्जियों का प्रयोग अधिक मात्रा में करें।

ऋतु अनुसार आहार

संपूर्ण संवत्सर को मुख्यतः 2 कालों में विभक्त कर सकते हैं–

आदान काल	विसर्ग काल
– अग्नि गुण प्रधान काल	– सौम्य गुण प्रधान काल
– शिशिर, वसंत, ग्रीष्म ऋतुएं इसमें आती हैं	– वर्षा, शरद, हेमंत ऋतुएं होता हैं।
– सूर्य का बल पूर्ण चंद्रमा का बल क्षीण	– सूर्य का बल क्षीण चंद्रमा का बल पूर्ण
– वायु अत्यंत रूक्ष	– वायु अधिक रूक्ष नहीं
– रूक्ष गुण तिक्त कषाय कटु रसों की वृद्धि	– स्निग्ध गुण, अम्ल मधुर लवण रसों की वृद्धि
– क्रमशः दुर्बलता की प्राप्ति होती है।	– क्रमशः बल की प्राप्ति होती है।

ऋतु अनुसार शारीरिक बल की स्थिति

विसर्गकाल के आदि में वर्षा, ग्रीष्म आदानकाल के अंत में	दुर्बलता
विसर्ग व आदान के मध्य में (शरीर व वसंत ऋतु)	बलमध्यम
विसर्ग का अंत (हेमंत ऋतु) आदान का आरंभ (शिशिर ऋतु)	बल की पूर्णता

ऋतु	प्रशस्त आहार	प्रशस्त विहार	व्याज्य आहार	त्याज्य विहार
हेमंत बल उत्तम जाठराग्नि तीव्र	स्निग्ध, गुरू आहार मोरस, मधु, गुड़, तैल नवीन अन्न, गरम जल, जल में शुण्ठी, काली मिर्च, मधु	अन्यंग, स्वेहन, आतप सेवन, उष्ण गृह में निवास	वातवर्धक आहार उपवास, अल्प भोजन, सत्तू	विहार, प्रवात सेवन
शिशिर	हेमंत ऋतु की तरह, किंतु इस काल में शीत की वृद्धि हो जाती है।		कटु, तिक्त, कषाय, लघु, शीत वातकारक आहार	
वसंत संचित कफ पिप्पल कर जाटराग्नि को दूषित कर देता है।	पुराने जौ, गेहूं	व्यायाम, गुनगुने जल से स्नान, धूम्रपान, ककल उबटन, अंजन चंदन, अगुरू का लेप	गुरू, स्निग्ध, मधुर अम्ल रस प्रधान	दिवास्वप्न
ग्रीष्म सूर्य की तीक्ष्णता के कार संसार	मधुर, शीत प्रधान अन्नपान चीनी मिले पानी में घुले सत्तू घी, दूध सहित शलि चावल	दिन में शीतल गृह में शयन रात्रि में शीतल द्रव्यों का लेप कर खुले	उष्ण, अम्ल, लवण, कटु रस प्रधान आहार	विशेष व्यायाम न करें

ऋतु	प्रशस्त आहार	प्रशस्त विहार	व्याज्य आहार	त्याज्य विहार
के प्राणियों व द्रव्य के स्नेह का शोषण	जल में मरिच, जीरा, मधु डालकर उवाल कर प्रयोग	आसमां के नीचे शयन। पंखों की हवा (चंदन आदि द्रव्यों से अभिसिंचित)		
वर्षा आदान काल में में रस व स्नेह के शोषित हो जाने से वर्षा काल में जाठअग्नि दुर्बल हो जाती है। वात का विशेष प्रकोप होता है।	शहद का प्रयोग बहुतयत से स्निग्ध, अम्ल, लवण रसों का सेवन पुराने जौ, गेहूं शलि चावल, गरम कर ठंडा किया। तुलसी व काली मिर्च डालकर उवाला हुआ जल	प्रघर्ष, उवटन, स्नान, सुगंधित पदार्थों का लेप, हल्के, स्वच्छ वस्त्र धारण	रात्रि में छत में सोना व्यायाम धूप का सेवन जल में घुले सत्तू नदियों का जल	दिवास्वप्न

ऋतु	प्रशस्त आहार	प्रशस्त विहार	व्याज्य आहार	त्याज्य विहार
शरद ऋतु	मधुर, तिक्त रस प्रधान शीतल, लघु, पित्तशामक अन्नपान जौ, गेहूं, शालि चावल, महातिक्त धृत का पान, हंसोदक (दिन में सूर्य की किरणों से तपा हुआ रात्रि चंद्रमा की किरणों से शीतल, समय के परिपाक से सुपक्व अनएवं निर्दोष जल व अगस्त्य के उदय होने के कारण जो विष विकार रहित यह शरद ऋतु का जल अत्यंत निर्मल व पवित्र	फूलों की मालाएं, निर्मल वस्त्र का धारण करना रात्रि के प्रथम प्रहर में चंद्रमा की किरणों का सेवन	क्षार, दही	दिवास्वप्न प्रावात का सेवन

दिनचर्या

सामान्य रूप से मनुष्य के लिए कुछ नित्य कर्म है, जो शारीरिक मानसिक स्वच्छता व स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इन कर्मों को करने का एक सही क्रम व विधि है, जिसका पालन करने पर यह हितकारी होते है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आवश्यकतानुसार इनमें कुछ परिवर्तन किए जा सकते हैं–

जागरण– प्रातःकाल पूर्व रात्रि में किए भोजन क व जीर्ण हो जाने पर उठे। ब्राह्म मूहुर्त (प्रातः 4-6 बजे), सूर्योदय के पूर्व जागरण श्रेष्ठ।

शौच विधि– जागरण के बाद पूर्व रात्रि में ताम्रपात्र में रखा 1/1/2 जल, नींबू शहद डालकर पिएं। कुछ कदम चाल करें/ताड़ासन/काकासन करें। फिर शौच जाएं।

शौच बिना किसी प्रयास के बंधा हुआ होना स्वास्थ्य का चिह्न है।

दंतधावन– कषाय (मौलश्री/खादिर/तेजबल) कटु (करज) व तिक्त (निम्ब) रस प्रधान वृक्षों की पतली शाखा के अग्र भाग को कूट कर Brush जैसा बना लें। शहद या सरसों का तैल में भिगोकर त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजाता तेजबल के चूर्णो को लगाकर एक-2 दांत को नीचे से उपर साफ करें।

प्रातः सांय दोनों बार दंतधावन करें फिर किसी अतीक्ष्ण (Blunt-edged) व curved जीभी से जिह्वा निर्लेखन करें। फिर मुख शुद्धि हेतु जायफल, लौंग, सुपारी, शीतल चीनी, कर्पूर, एला व ताम्बुल पत्र सेवन करें। जो दुर्बल हो भोजन के तुरंत बाद, गला-तालु-ओष्ठ, जिह्वा रोग, मुखपाक, कास-श्वास-हिक्का, अर्दित, कर्णशूल से पीड़ित रोगी दंतधावन का निषेध है गंडूष करना चाहिए।

आवश्यकतानुसार, उष्ण जल/तैल/दूध/शहद/औषध द्रव्यों के स्वरस या कल्क को मुख में डालकर कुछ काल तक रखना गंडूष कहलाता है।

मुखप्रक्षालन– सामान्य तापमान वाले जल से अथवा मुखशुद्धि करने वाले द्रव्या यथा एला जावित्री आदि से मुखप्रक्षालन करें।

नेत्रप्रक्षालन– सामान्य जल/गुलाब जल/त्रिफला से सिद्ध जल से नेत्रप्रक्षालन करें। प्रक्षालन से नेत्रों व मुख में जमा हुआ मल भी धुल जाता है। साथ ही उनमें दृढ़ता आती है।

अंजन– नेत्र, पित्त प्रधान अंग है। इसकी मुख्यतः कफ दोष से रक्षा की जानी चाहिए। प्रतिदिन सौविराजन हल्दी घी से निर्मित अंजन का प्रयोग करें। अजीर्ण होने पर, रोने के तत्काल बाद थकने पर, नवज्वर में, वेगधारण करने पर अंजन का निषेध है।

धूमपान– धूमवर्ति का निर्माण एक सींग पर बड़ी इलाइची, नागकेसर, तेजपत्र, दालचीनी, पीपल, आगुरू, गुग्गुल, राल आदि का लेप कर, सुखा कर किया जाता है। फिर धूमवर्ति को धूमनेत्र में लगाकर धूमपान किया जाता है। प्रतिदिन किया जाने वाला धूमपान प्रयोगिक धूमपान है। इसके 8 काल बताए गए है। जब वात, कफ दोषों का विशेष प्रकोप होता है। स्नान, भोजन, वमन, छींक आने, दातुन, वाय, अंजन, निद्रा के बाद। इनमें से किन्हीं दो कालों में ही धूमपान करें तथा एक बार में 3-3 घूंट लें फिर कुछ रूकें, इस सम्यक् धूमपान से शिर व ज्ञानेन्द्रियों का हल्कापन होता है।

पित्त प्रधान व्यक्ति, स्थिति व रोग में धूमपान का निषेध है।

नस्य– जब आकाश में घच्छादित न हो, तन विशेषतर बसंत, शरद, प्रवृट ऋतुओं में प्रतिदिन बिना भोजन किए दोनों नासिका में 2-4 बूंद आवश्यकतानुसार गेघृत, तिल तैल अधु तैल डालें।

आसन प्राणायम– कुछ ऐसे आसन-प्राणायाम सामान्य रूप से सभी के लिए नित्य कर्म के रूप में उपयोगी हैं। उन्हें नियमित रूप से हर किसी को कुछ समय निकालकर करना चाहिए। इससे नित्य नवीन ऊर्जा बनी रहती है।

नस्य सेवन से ज्ञानेन्द्रियों, मेधस तंत्र की शक्ति दृढ़ बनी रहती है केया भी न गिरते हैं न श्वेत होते हैं उर्ध्वजुगत समस्त रोगों से रक्षा होती है।

शिर पर स्नेह धारण करें

कानों में तैल धारण करने पर बधिरता, ऊंचा सुनना वातज कर्ण रोग आदि रोग नहीं होते।

संपूर्ण शरीर पर अभ्यंग करने पर सर्वाग्ड वातरोग नहीं होते तथा त्वचा सुदृढ़, मदु हो जाती है। शरीर बलवान व वृद्धावस्था देर से आती है। अभ्यंग सदैव अनुलाम दिशा में करें रात्रि में शयन पूर्व पदाभ्यंग आवश्यक करने से पैरों की शून्यता, स्तब्धता, थकावट नहीं होती तथा बल व स्थिरता बनी रहती है। तथा नेत्रों की दृष्टि शक्ति बढ़ती है।

व्यायाम उन सभी कर्मों को व्यायाम में अन्तर्भाव किया जा सकता है जिनमें शरीर में थकावट का अनुभव होता है। इससे व्यायाम करते-करते श्वास फूलने लगे पसीना आने लगे, मुख सूखने लगे, अपनी शक्ति से आधा (बलार्ध) ही व्यायाम करें। इस प्रकार नित्य व्यायाम करने पर शरीर में स्थिरता, बाधव, बल वृद्धि, जाठशक्ति की वृद्धि होती है। बसंत, ग्रीष्म ऋतुओं में तैराकी जैसे अल्प व्यायाम ही करें।

श्रम– प्रकृति के साथ परस्परता का निर्वाह करते हुए, उचित मात्रा में श्रम करने पर शरीर स्वस्थ भी बना रहता है, स्वस्थ ही स्वावलम्बन सिद्ध होता है। भोजन के तुरंत बाद, क्षीण, बाल, वृद्ध, वृश, कास-श्वास-क्षत रोग से पीड़ित पुरुष के लिए व्यायाम का निषेध है। व्यायाम के बाद शरीर का सुखपूर्वक मर्दण करके कुछ आराम करें। (atleast 1 hr.)

उद्वर्तन/शरीर मार्जन– जौ/चने/मसूर के आटे में सरसों तेल मिलाकर उबटन लगाएं। इससे शरीर का भारीपन, तद्रा, मैल, कंड का नाश होता है। रोमकूप खुलते हैं तथा स्वेदन प्रक्रिया ठीक होती है।

स्नान– स्नान से श्रम, स्वेद, मल का नाश होता है। अग्नि व आयु वर्धक है।

भोजन के तुरंत बाद, अध्मान, भरोचक, अतिसार, ज्वर, पीड़ित रोगी स्नान न करें।

अतिशीत तथा अति उष्ण जल से स्नान न करें। अतिशीतल जल कफ प्रकोपक होता है तथा उष्ण जल सिर पर डालने पर नेत्रों के लिए अहितकर होता है।

ततपश्चात निर्मल वस्त्र सुगंधित द्रव्य (चंदन, केसर, कस्तूरी) धारण करें। फिर भोजन करके दैनिक कार्य करें।

आजीविका हेतु न्यायानुकूल वृति अपनाएं तथा नित्य प्रति स्वाध्याय में तत्पर रहें, यही सुख कारक दिनचर्या है।

उचित आहार-विहार को ग्रहण करना तथा अहितकर आहार-विहार का त्याग क्रमशः करें।

मल, मूत्र, अपानवायु, वमन, छींक, उदगार, जंभाई, भूख, प्यास, आंसू, निद्रा, परिश्रम से उत्पन्न श्वास का वेग जब आए तभी उनका त्याग करें। इन

वेगों का धारण करने पर वायु अत्यंत प्रकपित होकर भयंकर असाध्य रोग उत्पन्न करती है।

वसंत, शरद व प्रवृद अर्थात चैत्र, मार्गशीर्ष व श्रावण मांस में दोषों का शोधन विशेषतः क्रमशः कफ, पित्त, वात का शोधन पंचकर्म द्वारा कराएं। शरीर शुक होने के बाद रसायन-वाजीकरण करें। इससे रस रक्त आदि धातुओं की वृद्धि होती है तथा रोगों की उत्पत्ति नहीं होती।

निद्रा

सम्यक् स्वास्थ्य के लिए उचित आहार-विहार तथा श्रम व विश्राम का संतुलन आवश्यक है। जब अपने-2 कर्मों में लगी हुई समस्त इंद्रियां थककर अपने-2 विषयों से निवृत्त हो जाती है, तब मनुष्य सो जाता है। शरीर निद्रा, कफ काल में सबसे गहरी आती है, अतः रात्रि में 10 बजे के अंदर-2 निद्रा का अभ्यास करना चाहिए। तथा निद्रा के कम से कम 2-2-1/2 घंटे पूर्व रात्रि का भोजन कर लेना चाहिए। यथाविधि निद्रा सेवन से शरीरिक-मानसिक सुख पोषण, बल की वृद्धि तथा दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है।

असमय में, अधिक सोने से तथा दिन-रात्रि में कभी भी न सोने से कई सारे रोगों से मनुष्य ग्रस्त हो जाता है।

रात्रि जागरण से शरीर में रूक्षता तथा दिवाशयन से शरीर स्निग्धता बढ़ जाती है। कफ वृद्धि व पित्त प्रकोप होता है। बैठे-2 झपकी लेने से न रूक्षता बढ़ती है व स्निग्धता।

निम्न विशेष स्थितियों में दिवाशयन औषधि का कार्य करता है ग्रीष्म ऋतु में बालु वृद्ध, अतिकश में ऐसी स्थिति में जहां वातवृद्धि हो।

अध्ययन, गायन, संशोधन कर्मों के बाद बहुत अधिक शारीरिक श्रम (बोझा होने, मार्ग चलने) से कृश हुए, जिनका रात्रि किया हुआ भोजन न बचा हो, रात्रि जागरण से थके हुए, क्रोध, शोक, भय से पीड़ित उरक्षत, अतीसार, शूल, श्वास रोग से पीड़ित रोगी। इनमें दिवाशयन से कफ वृद्धि व अंगों की पुष्टि होती है।

दिवाशयन का निषेध– कफ प्रवृति, कफज रोग से पीड़ित, मेदस्वी, इसी विष से पीड़ित।

इनमें दिवाशयन से स्रोतोवरोध, पाचकग्नि की क्षीणता, शरीर में भारीपन, तंद्रा शिरा शूल, ज्वर, कोठ, कंडू, कंठरोग, प्रतिश्याय आदि हो जाता है।

अनिद्रा के कारण

किसी प्रिय कार्य में लग जाना

काल वृद्धावस्था में निद्रा कम हो जाती है, जिस समय सोने का अभ्यास न हो, उस समय में सोने पर।

विकार विशेषतः तप्त पित्तज

प्रकृति (सत्व गुण प्रधान)

अनिद्रा की शिरोधारा– नेत्रजर्पण, त्रिय शब्द, गंध का सेवन, अभ्यंग, उत्पादन, स्नान, संवाहन शालि चावल, दूध, घी, दही का सेवन

अतनिद्रा नाशक उपाय

सत्वगुण की अधिकता

तमोगुण को कम करना

शिरोविरेचन, कार्यविरेचन, उपवास, व्यायाम

गृह निर्माण

निवास स्थान ऐसा हो जिसमें प्रकृति से सीधा संपर्क रहे। सारी आवश्यकताएं पूरी हो। मुख्य बातें ध्यान में रखने वाली।

धरती से सीधा संपर्क (कच्ची मिट्टी वाला कुछ स्थान रहे।

वायु के cross ventilation की व्यवस्था हो। मल-मूत्र त्याग व स्नानागार का स्थान, रसोईघर से दूर हो।

ताजी सब्जियों को उगाने हेतु एक छोटा स्थान हो।

रसोईघर में चुल्हे की व्यवस्था हो।

खंड-III

तद्दुःखसंयोगा व्याध्यः। सु.सू. 1/23

किसी भी कारण से दुःख उत्पन्न होता है, उसकी रोग संज्ञा है। जब मानव जो कार्य करना चाहे वह करने में असमर्थ रहे, तब यह रोग की अवस्था होती है।

सुखसंज्ञकारोग्य विकारों दुःखमेव च। च.सू. 9/4

विकारो धातुवैषम्य साम्य प्रकृतिरूच्यते। च.सू. 9/4

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ। अ.ह.नि. 12/1

समस्त रोगों की उत्पत्ति के कारणभूत दोषों का साम्य या प्रकोप अग्नि के अधीन है। अग्नि मद हो तो प्रसादभूत अन्न रस, धातु उपधातु की पुष्टि यथावत न होकर, मलभूत दोषों की ही उत्पत्ति अधिक होती है।

अग्नि को प्रदीप्त रखना में वायु हेतु है। साथ ही पित्त कफ, दोष सभी धातु, मलों का भी शरीर में संरचण वातदोष ही करता है। अतः सम वातदोष स्वास्थावस्था बनाए रखने में तथा विकृत/श्रय/वृद्धि) वात, रोगोत्पादक प्रधान कारण है।

वायु के प्रकृत कर्मों में मलों का बहिःक्षेपण एक प्रधान कर्म है। प्रकृतिक यह कार्य सम्यक् रूप से नहीं करती जिससे दोषों व मलों का शरीर में संचय, वृद्धि, प्रकोप होकर तज्जन्य रोगों की उत्पत्ति होती है। समावस्था में सभी दोषों के प्राकृत कर्मों की चर्चा खंड में हुई है।

रोग 2 प्रकार से हो सकत हैं– किसी एक दोष के प्रकोपक आहार-विहार का अधिक सेवन से दोष वादादि दो इत्यादि धातु, रज तम मानसिक दोष, मल प्रकृपित होकर विकार उत्पन्न करते हैं। जिसका प्रधान लक्षण इंद्रियों की अप्रसन्नता होती है। प्रवृपित होकर दोष प्रकोप जन्य रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे कफ के प्राकृत गुण स्निग्धता, शीत, मधुरता है। किन्तु इन गुणों वाले द्रव्यों का बहुत अधिक मात्रा में सेवन कर लेने पर कफ वृद्धि को प्राप्त होकर कफज रोग जैसे कंडू, अरूचि, अग्नमांय उत्पन्न कर देता है।

दोषों के प्रत्येक आहार-विहार का अधिक सेवन पर्याप्त मात्रा में नहीं करने पर दोषों का क्षय होकर दनके प्राकृत कर्मों का क्षय होकर दो क्षय जन्य

रोग हो जाते हैं। जैसे कफ का क्षय हो जाने पर शरीर में रूक्षता उत्पन्न हो जाती है।

दोष प्रकृपित होकर कैसे रोग उत्पन्न करता है उसकी निम्न 5 अवस्थाएं हैं–

इन अवस्थाओं को ''क्रियाकाल'' अर्थात् चिकित्सा के लिए अवसर कहा गया है। इन क्रियाकालों में यथाशीघ्र चिकित्सा कर लेने पर रोग आगे नहीं बढ़ता। प्रथम क्रियाकाल में उचित उपाय करना श्रेष्ठ होता है।

यह क्रियाकाल निम्न हैं–

क्रियाकाल	निदान	V	P	K	विशेष उपाय
प्रथम (संचय) जैसे धृत के समान)	ऋतुचर्या के नियमों के अनुसार उचित आहार-विहार नहीं करने पर दोषों का स्वस्थान में इक्ट्ठा होना	कोष्ठ में भारीपन, पूर्णता	रोगी को पीलेपन का आभास उष्णता की कमी	आलस्य अंगों में भारीपन	
द्वितीय (प्रकोप) दोष गरम घी के समान	अधिक मात्रा में मटर, मूंग, मटर आदि आहार, उपवास विषमाशन, बेगावरोध आदि से वात अम्ल लवण कटु रस प्रधान, उष्ण तीक्ष्ण तिल कलथ, सरसों का तैल, क्रोध शोक से पित्त मीठे फल लौकी, कुम्हड़ा, दूध, दही दिवाशयन, आलस्य से कफ प्रकृपित हो जाता है।	कोष्ठ में सुई चुभना वायु का संचार	खट्टी डकार, प्यास लगना, दाह होना	अन्न में द्वेषह जी मिचलाना	
तृतीय (प्रसर) उष्ण दूध अन्युष्ण होने पर जब उत्पन्न कर पात्र से बाहर आ जाता है।	वातादि दोष बहुत अधिक मात्रा में संचित व प्रकृपित होकर अपने-2 आशय रूपी मर्यादाओं का उल्लंघन कर कभी अकेले कभी 2-4 कभी तीनों कभी रक्त के साथ ऐसे 15 प्रकार से फैलता है।	दोषों का विमार्गगमन आरोप	औष, चोष, परिदाह, धुंए का साश्वास डकार	अरूचि, भोजन का न पचना, वमन	प्रसारित होकर दोष जिस दोष के स्थान में जाए उस स्थान के दोष की चिकित्सा करनी चाहिए

क्रियाकाल	Pathsgenesis	लक्षण
चतुर्थ (स्थान संचय)	प्रकृपित व प्रसरित हुए दोष शरीर के भिन्न-2 स्थान में पहुंच कर स्रोतो दृष्टि करने हैं प्रकृपित वात अपने शीत की अधिकता से स्रोतो को संकुचित करके तथा पित्त व कफ स्रोतोरोध करके धातु उपधातु व मलों की गति को अवरूद्ध कर देता है जिससे धातु का पोषण ठीक प्रकार से नहीं होता तथा पित्त दोष धातु का संयोग होने पर रोगोत्पत्ति इस अवस्था में पूर्वरूप की उत्पत्ति होती है।	दोष शरीर के जिस-2 स्थान में जाते हैं उस तरह से लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे उदर में प्रवेश का गुल्म, विद्रधि, अतिसार अस्थि में विद्रधि, अनुशयी, त्वचा, आंत, रक्त में उद्ररोग, कुष्ठ, विणर्प
पंचम (रूपावस्था)	रोग के लक्षण प्रकट हो जाते है। शोफ, भर्वुदर ज्वर अतिसार के रूप में पूर्णरूपेण	
षष्ठ (भेदावस्था)	रोग के अधिक समय तक बने रहने पर उसके उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं जैसे ज्वर के साथ पाह की अधिकता से अतिसार।	

रोगों के भेद

रोगों की उत्पत्ति, फैलाव, गंभीरता आदि को समझ कर सम्यक चिकित्सा कापे के दृष्टिकोण से समझने की दृष्टि से अनेकानेक प्रकार से उनके भेद किए गए हैं–

रोग (क्रम में अंतर)

- निज (वातादि दोषों का प्रकोप हपले होकर व्यथा होना
- आंगतुज (पत्थर आदि के आघात से व्रण, सवित्र वुत्ता आदि प्राणि के काटने पर व्यथा पहले, फिर दोष प्रकोप)

रोग (अधिष्ठान व भेद) परस्पर अनुबंधित

- शरीर — शरीर दोषों का अधिक प्रकोप तथा शारीरिक लक्षणों का अधिक प्रकट रहना
- मानस — मानस दोषों का अधिक प्रकोप तथा मानसिक लक्षणों का अधिक प्रकट रहना

रोग (दोषों के प्रकोपानुसार)

- सामान्यज (दो/तीन दोषों के मिश्रित रूप ले प्रकोप होने से उत्पन्न)
- केवल नानात्मज (किसी एक दोष के प्रकोप से उत्पन्न रोग)

रोग (दोषों का जिस धातु में स्थान संश्रय होकर रोगोत्पत्ति हुई हो)
रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र प्रदोपज विकार

रोग (उत्पादक हेतु के अनुसार)

- आध्यित्मिक — वातादि शरीर दोष रजादिमानस दोष के उत्पन्न होने वाले रोग
- अधिभौतिक — भूत अर्थात् पंचमहाभूत के असंतुलन तथा भूत अर्थात् अन्य प्राणियों से उत्पन्न
- अधिदैविक — अमानुष योनियों तथा पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण

(आध्यित्मिक)
- आदिबल प्रवृत्त — शुक्र शेणित रूपी बीज में किसी प्रकार का दोष होने से
- जन्मबल प्रवृत्त — माता के सगर्भावस्था काल में मिथ्या आहार-विहार से
- दोषबल प्रवृत्त — मिथ्याहार-विहार से दोषों का प्रकोप होने से

अधिदैविक

- कालबल प्रवृत्त — ऋतुचर्या के उपयुक्त आहार-विहार न करने पर तथा ऋतु को व्यापन्न होने पर
- दैवबल प्रवृत्त — अभिशाप अभिचार
- स्वभावबल प्रवृत्त — वध्या पिपासा, निद्रा मत्य

रोग (चिकित्सा की दृष्टि से)

- साध्य
  - सुख साध्य (आसानी से साध्य)
  - कच्छसाध्य (कठिनता से चिकित्सा करना)
- असाध्य
  - साध्य (सदैव, निंरतर चिकित्सा करते रहने पर ठीक बने रहते हैं)
  - असाध्य (निश्चित मृत्यु)

रोग

- स्वतंत्र (दोष प्रकोप होकर प्रथम उत्पन्न हुए)
- परतंत्र (किसी दूसरे रोग के complication के रूप में उत्पन्न)

रोग

- साम
- विराम

रोग

- शस्त्रसाध्य — छेदन, भेदन इत्यादि रूपों में शस्त्रों द्वारा या जलौका आदि प्रभृति अनुशस्त्रों से साध्य यथा भगंदरए नाड़ीत्रण, गिलायु आदि
- स्नेहादि क्रिया साध्य — शमन या शोधन चि द्वारा साध्य यथा प्रमेह राजयक्ष्मा

रोग की पहचान

रोग की चिकित्सा तय करने से पूर्व रोग का स्वरूप का सही प्रकार से विनिश्चय करना आवश्यक है। इस हेतु 5 साधन निम्न हैं—

1. **निदान**— रोग के कारक हेतु इसके दो प्रयोजन होते हैं—

(अ) जिस प्रकार का निदान सेवन किया गया है, उससे कौन सा दोष प्रकोपित होगा यह अंदाजा लगाया जा सकता है। जैसे—क्रोध पित्त प्रकोपक, दिवास्वप्न आदि कफ प्रकोपक निदान हैं।

(ब) निदान परिवर्जन चिकित्सा का प्रथम सोपान है अर्थात् जिन कारणों के अधिक सेवन से रोग उत्पन्न हुआ हो, उनका परित्याग सर्वप्रथम आवश्यक है।

2. **पूर्वरूप**— 'पूर्वरूप' अर्थात् जब रोग के वास्तविक रूप पूर्णरूपेण प्रकट न हुए हो। पूर्वरूप व्याधि के चतुर्थ क्रियाकाल-स्थानसंश्रय की अवस्था में प्रकट होते हैं। इनके ज्ञान का प्रयोजन है कि रोग के लक्षण प्रकट होने के पूर्व ही उपयुक्त उपचारों द्वारा उसको बढ़ने से रोक लिया जाए। जैसे— ज्वर के पूर्वरूप अग्निमांद्य आदि प्रकट होने पर लघु भोजन प्रारंभ कर दें। कफज ज्वर के पूर्वरूप हों तो मृदु वमन करायें।

3. **रूप**— रोग के प्रत्यात्म लक्षणों, समग्र स्वरूप का ज्ञान रोग की साध्यासाध्यता के निश्चयन में सहायक होती है। रोग के निदान, पूर्वरूप रूप अल्प, मध्यम, अत्यधिक हो तो रोग क्रमशः सुख साध्य, कृच्छ साध्य, असाध्य होता है।

4. **उपशय**— जिस आहार, विहार, औषध, देश अथवा रोग पीड़ित पुरूष को रोग निवृत्ति के रूप में अनुबंध में सुख प्रदान करे उसे उपशय/सात्मय कहते हैं तथा इसके विपरीत अनुपशय/असात्मय होता है जिस रोगी में निदान पूर्वरूप लक्षण अस्पष्ट तथा गूढ़ हो, उनकी परीक्षा में उपशय अत्यंत सहायक होता है। जैसे—कटिशूल यदि शुद्ध वातप्रकोप से होता है, तो स्निग्ध, उष्ण उपचार लाभप्रद होते हैं। किंतु जब पित्त का साथ में प्रकोप हो तो तिक्त द्रव्य, मधुर द्रव्य अधिक लाभप्रद होते हैं।

5. **संप्राप्ति**— रोगारंभक दोष किस प्रकार से कुष्ट(वाय/वृद्धि) को प्राप्त हो शरीर में प्रसार करता हुआ रोग उत्पन्न करता है, इस पूरे विवरण को संप्राप्ति कहते हैं।

—संख्या (रोग के भेद) ज्वर 8 हैं।

—विकल्प (अंशांश कल्पना) कौन सा दोष कितने अंश में प्रकोपित है।

—प्रधान्य कौन सा प्रधानता से प्रकोपित है।

—बल रोग कितना बलवान है। आदि

रोगी की परीक्षा

रोग की परीक्षा के तीन मुख्य साधन हैं—

1. **आप्तोप्रदेश**—आप्त अर्थात् प्रमाणिक पुरूष जिन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ हो ऐसे पुरूष जिस प्रकार स्वयं रोग के हेतु लक्षण चिकित्सा आदि को सटीकता से समझ पाते हैं, वैसे ही दूसरों को बोध करा पाते हैं तथा यूं ही इसी शिक्षा संस्कार विधि से प्रमाणिक वैद्य परंपरा बन सकती है।

2. **प्रत्यक्ष**—आत्मा, मन, इंद्रिय व अनेक अर्थ का व्यवधान रहित साक्षात संबंध होने पर तत्काल जो संशय रहित व निश्चित ज्ञान होता है। उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है।

— रसेन्द्रिय द्वारा विविध रसों की परीक्षा को छोड़कर शेष सभी इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष द्वारा रोग व रोगी का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

— शब्देन्द्रिय द्वारा

अ. आंतरिकजन संधियों में स्फुन्टन, गर्भ के हलन-चलन (movements)

ब. इस इंद्रिय द्वारा ज्ञेय विषय आज के समय में विज्ञान द्वारा आविष्कृत विविध यंत्र यथा (stethscop. Doppler) आदि द्वारा अधिक स्पष्ट होते हैं।

— स्पर्शेन्द्रिय द्वारा

प्रकृति की तथा नाड़ी परीक्षा, ज्वरशोथ आदि रोगों में शीत-उष्ण लक्षण-खर, मृदु, कठिन, स्तंभ, स्पंद आदि प्राकृत-वैकृत स्पर्श की परीक्षा की जाती है।

— गंधेन्द्रिय द्वारा

रोगी की सर्वाङ्ग तथा मूत्र स्वेद, वर्ण आदि के प्राकृत-वैकृत गंध का ज्ञान होता है।

— चक्षुन्द्रिय द्वारा

संपूर्ण शरीर में दोष धातु, अधातु मलों के क्षय-वृद्धि के लक्षण

आकृति शरीर विभिन्न अंगों का प्रमाण वर्ण, प्रभा, छाया, आयु के लक्षण

पुरीष-मूत्र, वात के रोगविषयक लक्षण

नेत्र परीक्षा

- v नेत्र रूक्ष, धूम्र वर्ण, स्तंभ दृष्टि, कोटर के अंदर प्रातः
- p नेत्र दाहयुक्त हरिद। रक्त हरित वर्ण का
- k स्निग्ध, श्वेतवर्ण, मलयुक्त, अश्रुपूर्ण

जिह्वा परीक्षा

- v शाक पत्र पहरा खर स्पर्श, स्फरित
- p रक्त, श्याव प्रयाम वर्ण की हरित वर्ण का
- k श्वेतवर्ण, आर्द्र, मल से उपलिप्त अति पिच्छिल

स्पर्श परीक्षा

- v शीत
- p उष्ण
- k आर्द्र होता है।

अनुमान प्रमाण

अनुमान प्रमाण का प्रयोग रोगी से प्रश्न करके किया जाता है। प्रश्न द्वारा निम्न बातें तय की जाती हैं—

1. **देश** 3 भेद
   - जांगल (वातपित्तज)
   - आनूप (कफ प्रधान)
   - साधारण (दोषों का साम्य)

2. **काल** (किस समय दिन/रात्रि के किस भाग में रोग का आरंभ तथा अंत हुआ)

3. **सात्म्य/असात्म्य**— जो आहार, विहार, औषण देशकाल आदि जन्म से ही पुरुष को सुखकर हों, वो सातम्य, इनके विपरीत असंख्या करते हैं।

4. **वेदनाएं**— वेदना के स्वरूप व स्थान के ज्ञान से उसके कारण भूत दोष का ज्ञान होता है। तोद, भेद आदि पीड़ा वात के कारण दाह आदि पित्त तथा गौरव कदू आदि कफ प्रकोप होता है।

बल— शरीरिक, मानसिक, वाचिक श्रम करने की शक्ति को बल कहते हैं। इसे रोग की साध्यता का ज्ञान होता है।

जठराग्नि— अग्नि प्रदीप्त हो तो धात्वविनयों व धातु उपधातुओं की पुष्टि यथावत होती है। अग्नि व रूचि उत्तम हो ता रोग शीघ्र शांत होने की आशा होती है।

कोष्ठ— मल प्रवृत्ति कैसी होती है, इससे चिकित्सा में अत्यंत सुविधा होती है। पित्त प्रधान (मदु) कफवात प्रधान क्रूर आसानी से विरेचन कठिनाई से विरेचन।

स्वप्न दर्शन— इससे प्रवृति का ज्ञान भी होता है जैसे वातप्रवृति पुरुष आकाश में उड़ने का स्वप्न देखते हैं।

रुग्णावस्था के पूर्व रूप, रूपों की परीक्षा में भी स्वप्न दर्शन का महत्व है। जैसे सकमा के पूर्वरूप में शुष्क, दावातल से दग्ध वन इत्यादि के दर्शन के स्वप्न रोगी देखा करते हैं।

चिकित्सा

चिकित्सा का सूत्र है कि शरीर का स्वस्थ रहना, व्यवस्था सहज है। जब अनुचित आहार-विहार विचार व्यवहार के कारण शरीर के क्रियाकलाप में कुछ व्यतिरेक आ जाता है, तब रोग होता है। इस व्यतिरेक को हटाकर उचित आहार-विहार करते हैं, तो शरीर फिर स्वस्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

मानव शरीर प्राणावस्था की इकाई है, वह भी उन्हीं पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से निर्मित है, जिनसे कि शेष प्रकृति रोग, पंचमहाभूतों के असंतुलन से होता है, तो विविध उपायों द्वारा इनके संतुलन का प्रयास किया जा सकता है।

आकाश तत्व

उपवास—

आवश्यकतानुसार

. जल उपवास (जब शरीर में अत्यधिक दोष हों)

. रसाहार (ताजे फलों के रस पर)

- . फलाहार (मौसमी फलों का सेवन कर)
- . केवल सब्जी/सब्जी के रसों पर
- . दूध पर
- . किसी एक अनाज
- . निःस्वाद भोजन (बिना अलग से शक्कर नमक डाले)

वायु तत्व

– प्रातःकाल, खुली, ताजी हवा में सैर करना।
– यज्ञोपैथी (प्रतिदिन के लिए कुछ खास औषधियों को अगरबत्ती के रूप में हम उपयोग कर सकते हैं।
– प्राणयाम का नियमित अभ्यास

अग्नि तत्व

– विविध प्राकर से रूक्ष/आर्द्र अग्नि देकर शरीर के रक्त संचरण को ठीक किया जाता है, शेष कूप खोलकर संचित विजातीय जलों का निष्कासन किया जाता है।

जल तत्व

शुद्ध जल उचित मात्रा में पीना। जिस व्यक्ति का जितना वजन है, उसके 1/10 पानी की मात्रा उसके लिए उपयोगी है।

जल को रोगानुसार विविध औषधियों से सिद्ध करके।

गीली पट्टी/चादर लपेट

कटिस्नान, spinalbath, hipbath यह सब जल चिकित्सा के अंतर्गत ही आता है।

पृथ्वी तत्व

गंध चिकित्सा (विशिष्ट औषधियों के गंध से रोग निवारण)

आहार चिकित्सा

अभ्यंग चिकित्सा (Massages)

मिट्टी पट्टी, मिट्टी लेप यह सब पृथ्वी तत्व की चिकित्सा में आते हैं।

योगाभ्यास

आसन

योगाभ्यास का यदि नियमित कुछ समय के लिए ही, सही विधि से अभ्यास किया जाए तो शरीर बल जीवनी शक्ति का संवर्धन भी होता है साथ ही यदि कोई रोग हो तो उसकी निवृत्ति भी होती है।

हठ योग में 84 प्रकार के आसन बताए गए हैं इनका आविष्कार प्रकृति के विविध वनस्पति, जीव-जंतु के कार्य-कलापों, उनके बैठने, शारीरिक अंगों को खींचने-ढीला करने के ढंग का सूक्ष्म निरीक्षण करके हुआ है। इनके अभ्यास से शरीर के विभिन्न अंगों का समुचित व्यायाम-विश्राम का उद्देश्य पूरा होता है तथा उन पर किसी प्रकार का कु प्रभाव न पड़कर क्रियाशक्ति की वृद्धि होती है। इन आसनों को 5 श्रेणी में बांटा जा सकता है (समझने की दृष्टि से)–

1. वे आसन, जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों के रहन-सहन, उठने-बैठने के ढंग के आधार पर निकाले गए। जैसे– मयूरासन, भुजंगासन, मकारासन, भाजरिसन आदि।
2. विशेष पदार्थों की आकृति से मिलते-जुलते। जैसे नौकासन, हलासन, चक्रासन।
3. कई प्रकार की वनस्पतियों-वृक्षों के अनुकरण पर जैसे पद्मासन, ताड़ासन, वृक्षासन।
4. कुछ आसनों का शरीर के विशिष्ट अंगों को पुष्ट बनाने का विशिष्ट उद्देश्य होता है। जैसे–सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, हस्तपादासन।
5. कुछ आसन, अपने आविष्कारकर्त्ता के नाम से प्रसिद्ध हो गए। जैसे–मत्येन्द्रासन।

आसनों का शरीर पर प्रभाव–

शरीर की निष्क्रियता ही रोगों को आमंत्रण देती है। जब विजातीय द्रव्य शरीर में बहुत अधिक मात्रा में एकत्र हो जाते है तथा समय पर निष्कासित नहीं हो पाते, यही रोगों का कारण बनता है। आसन जब प्राणायाम के साथ लयबद्ध विधि से किया जाता है, तो वह शरीर के सभी संस्थानों पर

सकरात्मक प्रभाव डालते हैं। कुछ प्रमुख संस्थानों पर आसनों का प्रभाव निम्न प्रकार से वर्णित है।

पेट व पेड़ के लिये निर्धारित व्यायाम जैसे–कपालभाती प्राणायाम, मयूरासन, वज्रासन आदि सभी तरीके से करने पर आंतो की आकुंचन-प्रसारण प्रक्रिया ठीक से होती है, जिससे मल निष्कासन ठीक प्रकार से होता है तथा पाचन के लिए उत्तरदायी Enyzymer जिन ग्रंथियों से स्रावित होते हैं, उन पर भी हल्का दवाब पड़ने से वे भी क्रियाशील बनी रहती है।

पाचन क्रिया के बाद अवशोषित अम्ल यौगिकी के जलने से बने Co2 को Carbolic अम्ल के रूप में रक्त से श्वसन संस्थान प्राप्त करता है तथा उसे वायु रूप देकर श्वास के साथ अंदर प्रविष्ट प्राणवायु O2 से Exchange कर प्रश्वास बाहर फेंक देता है। रक्त में विद्यमान कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिक टूटकर जो अम्ल बनाते है। उनका यदि लगातार पूर्णरूपेण निष्कासन नहीं होता तथा शरीर के किसी भी अंग में संचय होता रहता है तो वह धीरे-2 रोग का रूप ले लेगा। श्वास उथली रहती है, तो कम वायुकोश को खुलेंगे तथा अशुद्धि की मात्रा बढ़ती जाऐगी। गहरी व सही तरीके से ली गई सांस हर पायुकोष को खोलती व कोशिका वायुकोश के मध्य स्थित झिल्ली को सक्रिय बनाती है। प्राणायाम तथा श्वसन संस्थान के अन्य सूक्ष्म व्यायामों के द्वारा के चारों ओर की मांसपेशियों की सक्रियता, पेट व छाती के बीच का Diaphraym, रीढ़ की हड्डी से जुड़े Musels को सुदृड़ करता है। जिससे श्वास गहरी हो जाती है तथा प्राणवायु प्रचुर मात्रा में अंदर जाता है तथा Co2 भी ठीक प्रकार से निष्कासित होती है।

स्वस्थ रहने के लिए पूरे शरीर में रक्त संचरण सर्वव्यापी, स्वाभाविक रूप में पूरे शरीर के हरेक जीवकोश तक पहुंचे। आसनों द्वारा ह्रदय की pumping क्षमता बढ़ जाती है तथा सभी तरह की Nerves (Arteries, veins, capillaries) की क्षमता बढ़कर रक्त संचरण सही प्रकार से होती है।

आसनों द्वारा nervous system के Sensation-moto-sympathetic-parasymph सभी nerves की संवेदनशीलता बढ़ जाती है, neuro-hormonal enzymes का स्राव पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार

जीवनीय शक्ति को नित्य हल्की सी थपकी लगती रहने पर स्वास्थय बना रहता है।

अनेकानेक आसनों में कुछ आसन
–मल बहाने वाले
–खिंचाव प्रधान आसन
–विशिष्ट संस्थानों पर प्रभाव डालने वाले आसन

आसनों के अभ्यास में नियमितता तथा प्रातःकाल का नियत समय तय करना उपयोगी है। अभ्यास से पूर्व शौच से निवृत हो जाए। अभ्यास में शीघ्रता न करें तथा अति नहीं करनी चाहिए। अर्धशक्ति भर ही व्यायाम करें। आसन पर्याप्त धूप-वायु वाले स्थान में करना अधिक लाभप्रद रहता है। व्यस्तता अधिक होने पर 15-30 मिनट का समय नित्य निकाल कर
–Brisk walking
–प्राणायाम (अनुलोम-विलाम, भ्रामरी, कपालभाती आदि)
–सूर्य नमस्कार
–विशिष्ट संस्थानों से संबंधित व्यायाम का एक चंबांहम बनाकर अवश्य अभ्यास करना चाहिए।

प्रमुख आसन

उदररोग	उत्रानपादासन, पवनमुक्तासन, सुप्तवज्रासन,	
	कपालभाती, प्राणायाम लघु/पूर्ण शंप्रक्षालन	
ग्रंथि तंत्र	समस आसन विशेषतः सर्वांगासन शीर्षासन	
(Fundocrinal	मत्स्येन्द्रासन– विशेषतः मधुमेह में	
system)	पवनमुक्तासन	गर्भाशय संबंधित रोग
	मपर्जारासन	यथा अल्पार्त्तव, कष्टार्त्तव में
मेरूदंत संबंधित	चक्रासन, मर्करासन, मकरासन, भुंजगासन,	
रोगों में	कटिउत्रासन, शलभासन, उष्ट्रासन, त्रिकोणासन	
भेदोरोग	द्विचक्रिकासन, पादवृत्रासन, हलासन,	
(obesity)	सूर्यनमस्कार	

हृद रोगों में	शशकासन, भ्रामरी, अनुलोम विलोम, प्राणायाम
उर्ध्वजत्रुगत कफ विकार श्वास	नेति क्रिया, कुंजल क्रिया
विश्राम हेतु (Anit-stress)	शवासन, योगनिद्रा, मकासन

प्राणायाम

A close link exists between the labe & depth of breathing and the level of emotional exictement of the mind when mind is relaxed and resting as in sleeping, meditation etc. breathing becomes slow & deep. Yoga recognised this link and utilizes this too calm down the mind.

Few imp pranayamas & their utility

अनुलोम-विलोम	Clears nasal passage, flow of breath through each nostril becomes smooth & slow. Very useful in nasal allergy, DNS.
नाड़ी शोधन	Lowers stress, anxiety by harmonity the Prana, balance between the mad.
शीतली, शीतकारी	Cooing & Soothening affect on eyes, ears,
सदंत	purifies blood, quenches thirsty has be bud and mouth are sensified. Reduces BP, activity, chronic skin diseases, reteases even very subtle tensions.
भ्रामरी	Reduces stress, cerebral tension. Reduces anger, anxiety, BP, insomnia, psychosomatic disorder.

Accupressure/Sujok/Acupuncture

यह सभी चिकित्सा पद्धतियों का प्रमुख सिद्धांत है कि शरीर भी समस्त प्रधान रक्तसंचार करने वाली नाड़ियों, स्नायु संस्थान ग्रंथियों के terminal points हथेली व पैर के तलुओं में स्थित है। इन विशिष्ट बिंदुओं पर उचित विधि से, सम्यक् काल तक दबाव डालने पर निम्न प्रभाव पड़ने से शरीर की रोगावस्था दूर होकर स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है–

असंतुलित आहार-विहार करने पर शरीर में धीरे-धीरे विजातीय द्रव्य संग्रहित होते जाते हैं। जो कि रोग का प्रधान कारण है। इन विधियों द्वारा दवाब डालने पर उन अंगों पर रक्त संचार बढ़ने पर विजातीय द्रव्य अपने स्थान से हिलकर धीरे से शरीर से निष्कासित हो जाते हैं।

शरीर में एक विद्युत शक्ति प्रवाहित होती रहती है। रोगावस्था में विशिष्ट अवयव में यह शक्ति क्षीण हो जाती है। उचित दवाब से यह शक्ति पुनः ठीक प्रकार से प्रवाहित होती है। जिससे नवीन उर्जा संचार होता है।

विशेषतः nervous system की supply हरेक अंग को रहती है जिन पर दवाब डालने पर धीरे-2 उस अंग की कार्यक्षमता बढ़ती है।

संपूर्ण स्नायु संस्थान की क्रियाशीलता बढ़ती है।

Endocrinal system पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

Accupressure विशेषतः Aculepain की स्थितियां cervical, Lumbar spondylast, scrafica, migranc, OA, RA, Paralysis Ferozen shoulder में Pain management हेतु अत्यंत उपयोगी है।

Acupresure की Diagnostic value भी काफी है। इस विधि द्वारा जो प्रतिबिम्ब केन्द्रों पर दवाब डालकर यह आसानी से पता लगा सकते हैं। कि शरीर के कौन से विशिष्ट अंग में विकार है।

प्रमुख सावधानियां

बिंदुओं पर मध्यम बल से ही दवाब डालें।

भोजन करने पर तुरंत बाद न करें। कुछ हल्का स्वल्पाहार लेने के कुछ देर बाद करें।

अंगूठे से Accupressure हेतु निर्मित अंगूठी Pen, standing pads द्वारा Accupressure किया जाता है।

Sujok व Accupressure के basic सिद्धांत एक से हैं। कुछ बिदुओं का अंतर है तथा Sujok में उन बिंदुओं पर लगातार दवाब डालने हेतु चना/मूंग दाल आदि का प्रयोग किया जाता है।

देन्यादिन प्रयोग हेतु कुछ 100 बिंदु प्रमुख हैं।

प्रत्येक बिंदु पर 30 sec से 2 min तक ही दबाव डालें। उससे अधिक नहीं।

बिंदुओं का ज्ञान सटीकता से होना, आवश्यक है।

इन्हीं कुछ सिंद्धातों पर मुद्रा विज्ञान भी वर्णन है। मुद्रा विज्ञान के अनुसार

अंगुष्ठ	अग्नि
तर्जनी	वायु
मध्यमा	आकाश
अनामिका	पृथ्वी

कनिष्ठ जल तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। इन पंचतत्वों की समस्थिति से देह निरोग रहती है। मुद्रा विज्ञान द्वारा इन्हीं तत्वों के समन्वय का प्रयास किया जाता है। प्रतिदिन चलते-फिरते, उठते बैठते, इनका प्रयोग लाभप्रद है। प्रधान मुद्राएं निम्न हैं।

ज्ञान मुद्रा	मस्तिष्क के स्नायु मजबूत। सिरदर्द, तनाव, क्रोध का नाश।
अपान	कब्ज, मूत्रावरोध में लाभप्रद
वायु	पक्षाधात, संधिवात, गठिया, कपवात में लाभप्रद
वरूण मुद्रा	त्वचा का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

Yagnopathy

Yagna is a scientific method of fumigation of specefic substances in the fire by which subtilization and sublimation of substances used, occurs. hence increasing their potency exponentially.
Substances used in Yagna mostly are Wood (should be dry. free from doubts insects, worms, It is used in form of small sticks of varying length. Wood of sandalwood tree, mango, agar-tagar, palash, Bilva, Pipal, Bargad, stam etc are prefered as per specefic requirement)
Counting Cake- Counting contains plenty of neutrol, ammonia, phenol, vidol compounds, formalin. Has strong anti-pathogenic activity and also anti-ratiational properties.

Havan Samagri has

a. Odoriferous substances like Camphor, chandan, agar-tagar, javitari, jayphal.
b. Sweet substances Preferrably Gud, Kismish, chhuhara, honey,
c. Ghee (preferably can't Ghee) is a tonic cardiac stimulants The invigorating gases produced by burning of caw pure ghee action balancing of the cycle of nature and inremoving all pathogenic bacteria.
d. Medicinal herbs common are Giloy, Bhrami, shankhpushpi, Nagkesar, Mulethi, Rakthachandan, Sardurtop Sandalwood, Gugul, Nagarmotha, Sugandbala, Rose Pebals, Agar-tagar wood chips, KapurKachari

The Way in which Havan

The way in which Samidhas and havishya are burnt in Yagna 3 a process of slow combustion at higher temperature. In this way very small quantity of O2 is utilised mearge co2 is emitted that poses no threat to environment. And also Co2 but it remains mixed with other aromatic oils antiseptic products so it acts as a vichicle in transporting. Such products to distant surroungings. Small amounts of Co2 inhaled by persons performing Yagna acts as cerebral stimulant.
The temperature attained in the Kunda varies between 250-600°c. When cellulose 8 other carbohydrate products undergo combustion, steam is formed in copious quantities by combination of hydrogen of organic substances with oxygen. In addition to it smoke is also given out in copious quantities and hence, thymol engenol etc are carried to par away places.
Ghee used in Yagna helps in rapid compultion of cellulose of wood and keeps the fire alight. The cumpultion of glycerol portion gives acetone bodies, pyruvic, adeyde etc. the hydrocarbons produced in reading undergo slow compultions as a result pormaldhryde, dormicacids,acetic acids are formed. all of which are good disinfectancts. The germicial action of formaldehyde is only effective in presence of natervapous which is also produced inarge

quantities in Yagna. Parasited like piles, ringmor dice etc either get killed or driven away by pumes of volatile oils like camphor.

-Respiratory system is most efficients and prominents among all inlets (for enerty & healthy substances) and outlebs (for waste & harmful substances) of the body. It is mosts imp. sources of our suvival. In absence of water few days a person can survive. But without oxygen, one can't prolong enen few minutes. Secondly, skin is largest organ of body.

The respiratory system & galaxy of skin poles play key role in enabling the absorption of energy. finals particles of herbs and materials used in Yagna in the blood, organs, cellular-molecular - suller units or our body. It is the quickest subtlest and most effective method of all medications.

Oran route take longer time and during is used onlypartly. It is further reduced of patients digestive system is weak. The same thing if infused directly into blood stream certainly shows rapid and better effect. However here too is significant effect could be less by deficiences of blood or problems of blood flow.

So, the herbal medicines related to particular systems could be used as havan samagri. Specefic havan samgaris for specefic diseases have been explained in atharveda and also undertrail in different institutes.

-The ash of Yogna has high content of phosphorus, Calcium, potasium, Magnesium, Nitrogen, Quispar which can be very effective fertilizar to plants and even if can fulfill many deficiences in human body.

- experiments have proven that Yagna considerably reduces level of SO_2 Naphous oxide in all samples and becteria count in water sample. Thus, providing a healthy environment to love in.

दैन्यादिन में प्रयुक्त हवन-सामग्री चंदन, इलायची, जायफल, जावित्री, गिलोय, अगर-तगर, असगंध, शतावन, लौंग, गुग्गुल, जीवंती, कचूर, हरर-हनीला, दालचीनी,रास्वा, भावला, जटा, मांसल, इंडजो, मुनक्का, छुआरा कमभाग में। कुछ कम भाग में केसर वंशलोचन, चिरौंजी, नारियल गिरी, किशमिश, पिस्ता, अखरोट। यह ताजी सूखी साफ हो। सामग्री कूटकर उसमें तिल, जौ, उड़द, शक्कर, गोधृत मिला लें।

यह बलवर्धक, सामान्य रोगनाशक, मानसिक शांतिदायक है।
कुछ एक विशिष्ट रोगों में निर्दिष्ट विशिष्ट हवन सामग्री निम्नानुसार है।

ज्वर में	तुलसी की लकड़ी व बीज, चिरायता, करंज-गिरी
कास में	मुलेठी, अडूसा, काकाड़सिंगी, इलाइची, कुलंजन
प्रमेह में	लालमखाना, मूसली, बड़ा गोखरू, शतावर
रक्त विकार	मजीठ, हरड़, काकुची, शरापुरवा
अनिद्रा में	काकजंधा, भारंगी, पीपलामूल
मस्तिष्क संबंधी विकारों में	गोरखमुड़ी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावर, वच
बंधयत्व में	शिवलिंगी, जटामासी, कूठ, शिलाजीत, पीपलवक्ष, केथा के फल, भटकराई।

Colour Therapy

सुर्यप्रकाश को Spectrometer से तोड़कर या Prism द्वारा सात रंग में विभक्त कर देखा जा सकता है। प्रत्येक प्रकाश किरण की अपनी विशिष्ट तरंग, लंबादि तथा आवृत्ति होती है।

मनुष्य शरीर में विद्यमान प्रत्येक अंग-अवयव, रस-रसायन, धातुओं, मलों का अपना एक प्राकृतिक रंग होता है इन रंगों में न्यूनाधिक्य रोगावस्था की सूचक है। इस न्यूनाधिक्य को सटीकता से जांचकर तदानुसार विविध रंगों की किरणों को आकर्षित-विकर्षित करके चिकित्सा की जा सकती है।

Colours मुख्यता 7 है– Violet, Indigo, Green, Blue, Yellow, Orange, Red.

यह visible हैं तथा इनके अतिरिक्त Ultraviolet तथा Infraed rays हैं जो कि नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होती हैं।

इनमें से भी प्रधान तीन रंग है लाल, पीला, नीला रंग। विभिन्न प्रयोगों से इनकी निम्न उपयोगिताए सिद्ध हुई हैं तथा Limitation

लाल रंग

यह अग्नि तत्व का द्योतक है।

रक्त संस्थान तथ तंत्रिका तंतु को क्रिया शील बनाता है। Adrenative hormone का secretion बढ़ता है। जिस अवयव की क्रियाशीलता कुछ कम हो रही हो वह इसके प्रयोग से गतिश बनाए जा सकते हैं। परंतु हृदय रोगी, उत्तेजित मनः अवस्था वाले रोगियों, क्रोधी आदि के लिए यह हानिकारक हो सकता है।

पीला– यह हृदय, फेफड़े, लीवर, तिल्ली तथा पाचन प्रणाली के लिए हितकारी। लसीका ग्रंथि को सक्रिय तथा रक्तशोधन का कार्य करता है।

नीला– यह शांतिदायक प्रधान रंग है। उच्च रक्तचाप, Anxiety Agression प्रधान मनोरोगों में यह अत्यंग उपयोगी है।

हरा– यह Pitutary glands (mastra gland) को सबसे अधिक प्रभावित करता है तथा इस प्रकार अधिक प्रभावित करता है तथा इस प्रकार समस्त endocarind system पर सकरात्मक प्रभाव डालता है।

Violet— यह Potasium sodium के balance को पुनर्जीवित करता है। Lymphatic system, cardiac system motor system पर सकारात्मक प्रभाव है। मस्तिष्कीय दुर्बलता पर अनुकूल प्रभाव डालता है।

श्वेत– शांति व स्फूर्ति प्रदायक

Ultraviolet— इसका प्रमुख कार्य Ca Ph के चयापचय तथा Vit. D के निर्माण का होता है। इसके सेवन से जीवनीय शक्ति बढ़ती है। Endocinal system की प्रक्रियाणामात्य होती है।

Infrared— रक्ताल्पता तथा रक्त का शरीर में असामन्य वितरण, शोध, जोड़ों का दर्द, संक्रामक रोग आदि के उपचार में अत्यंत लाभप्रद। इस हेतु Infrared lamps आते हैं।

इन रंगों का प्रयोग विधि–

सर्वश्रेष्ठ विधि है सूर्योदय के समय बिना या कम से कम वस्त्रों में सूर्यस्वप्न

अपेक्षित रंग की बोतल में पानी, घी, तैल, शक्कर आदि सूर्य की धूप में 8-10 घंटे रख कर प्रयोग

उन रंगों के वस्त्र उपयोग में लाना। उन-2 रंगों से रंगे कक्षों में रहना।
उन प्रधान रत्नों को डोरी से बांधकर रोगी के चारों ओर घुमाना।

Kitchen Clinic

घर में उपलब्ध मसालों का प्रयोग

परिवार में किसी के भी शरीर में कोई विकार उत्पन्न होने पर सर्वप्रथम घर में उपलब्ध संसाधनों में से प्रमुख हैं– मसाले

मसालों को तासीर के अनुसार मुख्यतः 2 भागों में बांटा जा सकता है। तथा तदनुसार उनके गुण धर्म कार्य होते हैं–

उष्ण वीर्य	**शीत वीर्य**
सौंठ (अदरक) पिघली थोड़ी) काली मिर्च, अजवाइन, शुबल जीरक, धनिया शतपुष्पा, मेथी, चंद्रशूर, हिंग, जातीफल, जावित्री, बड़ी इलाइची, तेजपत्र, नागकेसर	लौंग, छोटी इलाइची, त्वक्पत्र, दालचीनी
कफल व वात रोग नाशक रोचक पाचक, शूल, शोध नाशक, आमवात नाशक	पित्र शामक

कुछ विशिष्ट प्रयोग

राई– उदरकृमि नाशक, उदर पर लेप करने पर शूल व मरोड़ नाशक

सौंफ– श्रेष्ठ अम्ल पित्तनाशक, मूत्रदाह नाशक, इनको पानी के साथ पीसकर, नकसीर में अत्यंत उपयोगी।

मेथी– मधुमेह, आमवात, मूलतः वातनाशक प्रसव के बाद स्तनजनन व Harmonal regulation में अत्यंत उपयोगी।

जीरा– अरूचि, अफारा नाशक

अजवाइन– कफ वात नाशक, पित्त वर्धक पेट दर्द, फूलने की स्थिति में पोली लाकर सकते हैं।

जुकाम की स्थिति में जब नासावरोध में इसका धुंआ अत्यंत उपयोगी सत् अजवाइन को गरम जल में घोलकर साफ करने भी बढ़ता है। Antibiotic का काम करता है। नस्यर्त्तव या कब्यर्त्तव में 3 gm अजवाइन, सूप/फाट के साथ लें।

धनिया–हरी धनिया के रस से कुल्ला करने पर मुंह के छालों में लाभ/नाक से नकसीर फूटने पर डालते ही रक्त आना बंद हो जाता है। उल्टी होने पर धनिया का हिम दें।

किसी भी प्रकार के पाचक संस्थान संबंधी रोग होने पर बराबर मात्रा में जीरा, धनिया (खड़ी), सौंफ, अजवाइन, 1/2 मात्रा में मेथी सेंककर, चूर्ण बनाकर स्वादानुसार सेंधा नमक, काला नमक मिलाकर उपयोग करें, भोजन के बाद।

हल्दी–किसी भी तरह की गहरी चोट में हली का लेप तथा हल्दी के साथ दूध पिलाने पर दर्द, सूजन कम होकर धाव भ्नरे में सहायता होती है। हल्दी रक्तशोधक व रोगनाशक है। Antiseptic का काम करेगी।

हींग–उदर अम्ल में नाभी में लेप, बच्चों के सर्दी-जुकाम में धी के साथ गरम कर हाथ-पैर के नाखुनों पर लेप।

पुदीना–शीतल है। लू लगने, सिर दर्द, देजे में ठंड़ाई की तरह उपयोगी।

लहसुन–धृत में पकाकर छाती पर मालिश करने पर अस्थमा, पुराने श्वसन संस्थान संबंधी रोग दूर होते हैं।

लहसुन श्रीरपाक ह्रदरोगों, Hypercholerternor में लाभप्रद।

सभी प्रकार के बालरोगों में अंतरंग व बहिरंग प्रयोग

कर्णरोगो में तिल तैल में पकाकर प्रयोग।

प्याज–ऋतु सुख नियमित करता है।

नकसीर फूटने पर प्याज के रस का प्रयोग।

लू लगने पर ताजे रस का सेवन तथा शरीर पर लेप।

बड़ी इलायची–दांत व मसूढ़ों के विकार में इसके स्वाथ का कुल्ला।

इसके सेवन से पित्त स्राव ठीक होकर यकृतशोथ कम होता है।

छोटी इलायची–वमन, Nausea में इसका फांट तथा आंतरिक स्राव की कमी में पाचक नलिका के शिथिलता व दाहप्रधान रोगों में इसका बहुत प्रयोग होता है।

दालचीनी–उत्तम दीपन। वमन में चूवने से लाभ। आंत्रिक ज्वर (Typhoid) में आंत्रिक प्रतिदूषक औषध के रूप में लाभप्रद। राजक्षयमा दंडासू के उपसर्ग में तैल का व्यवहार प्रतिश्चाप, दांत के दर्द में नाड़ी शूल, अर्दित में जिह्वा के लकवे में तैल उपयोगी। कास-श्वास में गुणकारी।

तेजपत्र–इसके प्रयोग से गर्भाशय की शिथिलता दूर होकर गभाधान होता है या गर्भस्राव नहीं होता।

नागकेसर–इसकी छाल में रक्तार्श में मक्खन-मिश्री के साथ प्रयुक्त हाथ-पैरों की जलन में शतधौत धृत के साथ।

केसर–बच्चों की सर्दी में केसर युक्त गरम दूध पिलाते है।

सूर्यावर्त, आर्धाव भेदक में धृत में भून कर शक्कर मिलाकर द्रव्य के रूप में उपयोगी।

काली मिर्च–जुकाम, कास की श्रेष्ठ औषध

शरीर पर मस्सों पर इसका चूर्ण धृत का लेप

हिचकी में इसके चूर्ण के धुंए का प्रयोग।

जायफल–शक्तिवर्धक, शरीर में गर्मी बनाए रखता है।

सिरदर्द में जायफल कच्चा दूध में धिसकर माथे पर लगाएं।

मुंह के छालों में जायफल के काढ़े से कुल्ला।

लौंग–शीतल, नेत्रों के लिए हितकर कास-श्वास-दर्दनाशक क्षयनाशक, पाचक, दंतशूलनाशक, मूतल।

रोगों की सामान्य चिकित्सा

सिरदर्द(Headache)

इसके अनेक कारण हो सकते हैं–

. अत्यधिक तनाव, असम्यक् निद्रा
. नेत्रशक्ति का ह्रास
. sinusitis Cervical spondylosis.

- B.P. बढ़ या धट जाना

. सिरदर्द के उपयुक्त कारण को समझ कर, तदनुसार चिकित्सा करें। सामान्य क्रम में Alternate Hot & cold Footbath जलनेति, कुंजल, योगनिद्रा उपयोगी।

. सिरदर्द से तुरंत लाभ हेतु

जायफल कच्चे दूध में धिसकर, आवले को पानी में भिगोकर उसका सिर पर लेप करें।

. गाय की घी सुबह-शाम 2-2 बूंद डालें

. आंवले का शर्बत, सौंफ का शर्बत छोटी इलायची का क्वाथ गुढ़ कर पीए।

स्मरण शक्ति वर्धक/स्नायु संस्थान की कमजोरी

. 5-10 बादाम घिस कर दूध के साथ
. आंवले का मुरब्बा
. चारों मगज दूध के साथ लें।

बालों के स्वास्थ्य हेतु

. बालों को साफ रखें। दही+बेसन/मुलतानी मिट्टी+ नींबू (आंवला-रीठा-शिकाकाई) से बाल धोवें।

. साफ बालों में कोई अच्छा (नीलीभृगांदि/केशरंजनी/भृंगामलकादि तैल) हल्का गुनगुना लगा कर, अच्छी तरह मसाज करें। गरम तौलिए से भाप दें।

. प्रतिदिन 1 छोटा चम्मच त्रिफला/आंवला खाएं।

. अधिक बाल झड़ने पर बादामगिरी को त्रिफला/गुलाबजल में रात भर भिगो कर दूसरे दिन महीन पीसकर बालों की जड़ों में लगाएं।

. सुबह खाली पेट शीर्षासन करने, नियमित नेति-कुंजल करने से भी उर्ध्वजतुगत सभी अवयव (मेधस, बाल, आंख, कान, नाक, रसेन्द्रिय) स्वस्थ बने रहते हैं।

नेत्र ज्योति

. गाजर, टमाटर, पपीता नित्यप्रति 5 बादाम गिरी महीन पीसकर 5 काली मिर्च के साथ सेवन

. आंवले/त्रिफला कवाथ से नेत्रों को धोना/तर्पण

. नेत्रों में 2 बूंद शहद/गुलाबजल/हल्दी का क्वाथ डालना।

कान के रोग

. सदैव नेति क्रिया करें। शौच के समय 15-20 बार जोर लगाकर पूरा मुंह खोलकर बंद करें।

. बिल्व तेल/कर्णपूरण तेल/ का प्रयोग

. कस्तूरी + बादाम तेल समय समय पर करते रहें।

नासिका संबंधी

. नित्यप्रति गाय का धी/सरसों/तिल तेल 2-4 बूंद डालें।

. जुकाम में हल्दी, काली मिर्च चूर्ण + गुढ़, पानी में छोटी इलाइची, दालचीनी, तेजपत्ता को उबाल कर लें।

. नकसीर में मुलतानी 250ग्रा0 मिट्टी को 1 लिटर पानी में भिगो दें। सुबह उपर के पानी को भली भांति छान लें। इस पानी को 2-3 बार यह पानी पीएं, मिश्री मिलाकर, मिट्टी का लेप माथे, नाक के चारों तरफ लगातार 4-5 बार करें। नाक में धनिया/सौंफ का रस डालें।

दांतों के रोग

. सरसों के तेल + सेंधानमक डालकर मंजन करें।

. अमरूद के पत्तों के क्वाथ से कुल्ला करें। नियमित नीम/खादिर/बबूल के दातून करने से दांत की मांसपेशियों का व्यायाम होता है। दालचीनी/लौंग के तेल का फाया लगाएं।

मुंह के छाले

. गुलाबी गुलाब की पंखुड़ियों को पीसकर (पित्तज)
. सुहागा + शहद (कफज)
. दालचीनी/कत्था चूसने पर (वात/पित्तज)

गले का रोग

. मुलेठी का क्वाथ/काली मिर्च 4 + मिश्री/गुड़/मुनक्का मिलाकर चूसें।
. टंकंणभाम + शहद

त्वचा

. नित्य शीतल जल से स्नान,

नहाने के पूर्व उबटन का प्रयोग/खुरदरी Towel से रगड़ना/समय-समय पर मालिश व स्वेदन त्वचा को स्वस्थ रखते हैं।

घम्होरियों में शरद भष्म + टेकण भष्म की dusting मुल्तानी मिट्टी को रात्रि में पानी में भिगोकर, गुलाब जल के साथ लेप

कण्टू में नीम सिद्ध जल से स्नान, हल्दी का लेप काली मिर्च सिम तैल की मालिश

उदर्द (पित्ती उछलना) अदरक का रस 1 च. + गुड़ मिलाकर दिन में 3-3 च.। 1 I पानी + 1 तो. नमक डाल कर पिएं तथा नहाने के पानी में भी नमक डालें। Fungal infection में धत्तूरपत्र/नीम पत्र से सिद्ध तैल।

नाखून– नाखूनों में कुछ दिनों में बादाम/जैतून तैल लगाकर मालिश करें। Detergent आदि का प्रयोग करने के बाद हाथ पर सिरका लगाकर साफ पानी से धो लें।

भोजन में चुकंदर (Ca. Vit. A). किशमिश Diary products का प्रयोग।

फेफड़ों का स्वास्थ्य– नियमित नेति, कुंजल, नस्य, धूमपान, प्राणायाम सप्ताह में उपवास। कफ बढ़ाने वाली चीजें जैसे दही, चावल का प्रयोग नहीं।

पानी में अदरक डालकर उबाल कर शहद नित्य सेवन

काले चने का सूप बनाकर

गरम दूध + केसर नित्य प्रयोग

त्रिफला (बराबर) + छोटी पीपल प्रत्येक 50-50 g बारीक पीस कर, सुबह शाम शहद डालकर रात को खांसी आने पर मुंह में अदरक/बहेड़े का एक टुकड़ा डालकर चूसें।

हृदय व सामान्य BP हेतु– नियमित व्यायाम विशेषतः स्वच्छ हवा में टहलना, प्राणायाम साथ ही उपयुक्त विधि से श्वासन भोजन सादा, संतुलित। HDL बढ़ाने वाले भोजन यथा गोदुग्ध, गोधृत।

भोजन में लहसुन का प्रयोग

अर्जुन क्षीर पाक, लहसुन क्षीरपाक, सहजन पत्रों की रस प्रातः उठकर 3-4 gram गुनगना पानी + नींबू + शहद पिएं। 15 min तक मालिश, जिसमें direction हृदय की ओर हो।

भोजन में ज्यादा नमक न लें।

रात में सोने के पहले Hot Foot Bath लेकर सिर, माथे पर बादाम तैल से तथा पैरों पर सरसों के तैल की मालिश करके श्वासन/योग निद्रा करते हुए 7-8 घंटे की नींद अवश्य लें।

निम्न रक्तचाप में धृत अर्जित हींग ऐसे भोज्य पदार्थ निमें लौह अधिक हो जैसे पालक, बथुआ, मेथी, पुदीना इसका सेवन लाभप्रद होता है। आंवला चूर्ण + शहद (बराबर) प्रातःकाल खाली पेट।

फल सब्जियां जिनमें Sodium कम हो तथा potassium व Calcium rich हों जैसे गाजर, मुनक्का, बादाम, आंवला, आंवला का मुरब्बा, संतरा, केला, अनार, नारियल पानी, नींबू, सोयाबीन।

Liver Spleen— ¼ तक उबला पानी/धूप में पका पानी

छाछ, संतरे/मौसमी का रस, गन्ने का रस

मूली के पत्तों का रस, परवल, लौकी, तुरई, पुदीने का रस 1 च. + चीनी मकोय के बीज का अर्क + बराबर पानी भूई आंवले का रस अत्यंत उपयोगी।

Digestive disorders— सही समय पर, सही मात्रा में सही भोजन करना भोजन के तुरंत बाद पानी नहीं पीना तथा व्यायाम नहीं करके 15 min. आराम करके भोजन के बाद अजवाइन, सौंफ, जीरा, धनिया बराबर के चूर्ण में काला व सेंधा नमक व शक्कर मिलाकर प्रयोग करने पर digetive disorder नहीं होते। भोजन के पूर्व अदरक का छोटा टुकड़ा, नमक, नींबू का रस ठीक प्रकार से भूख खोल देती है।

कब्ज न रहे, इस हेतु 4-5 भीगे हुए अंजीर, 20 मुनक्के रात्रि भोजन के बाद गरम दूध से लें। छोटी हरड़, देसी घी में भूनकर काफी उपयोगी होती है। अतिसार में अनार के फल व त्वक् का चूर्ण, कच्चे बेल फल का भूना चूर्ण

अम्लपित्त में सौंफ/धनिया का पानी, पत्तागोभी का रस, खीरे का रस।

Piles में तेजपत्र चूर्ण ½ च. सुबह-शाम Bleeding piles में धनिया का क्वाथा मिश्री

यात्रा में naursea की feeing होने पर दालचीनी 1 टुकड़ा, लौंग को

मुंह में डालकर चूसें या 50 g पानी में भलीभांति उबाल कर काढ़ा बनाकर, उबाल लें तथा गुनगुना रहने पर छानकर धीरे-2 पिएं।

हिक्का रोग में सौंफ/लौंग/छोटी इलाइची के काढ़े का सेवन

काली मिर्च का धुंआ।

Kidney related disorders

भोजन में पानी, जल प्रधान आहार जैसे नींबू पानी, नारियल पानी, मौसमी रसीले फल नारंगी मौसंबी अधिक लें। गन्ने का रस, छाछ, अनानस, खीरा, पालक, टमाटर, उड़द दाल, तनी चीजें, मिर्च मसालों का अधिक प्रयोग न करें।

मूत्रदाह होने पर सूखे धनिया का चूर्ण + गुड़ मधुमेह में बेसन की रोटी, आंवला + नींबू + शहद, नित्य 2 पत्ती नीम, करेले का रस, जामुन की गुठली का चूर्ण प्रातः खाली पेट लें।

Kidney stones होने पर कुलथी की दाल अच्छी तरह उबाल कर या रात्रिपर्यंत पानी में भिगोकर उस पानी को पिएं। मेंहदी के पत्ते 5 g को 400 g पानी में ½ करके गरम-2 लें।

गन्ने की जड़ों का प्रयोग।

ज्वर

सभी ज्वर में पानी उबालकर ¾ रह जाए उसी का उपयोग करें।

नारियल पानी, फलों का रस, सब्जियों के सूप, मूंग दाल की खिचड़ी-दलिया का प्रयोग करें। परवल के पत्ते नीमपत्र व धनिया के क्वाथ 15 ml सुबह शाम लें।

ज्वर बहुत तेज हो, तो कपूर 1 रत्ती पानी से या चंदन का शुद्ध तेल 5 बूंद बतासे में डालकर दें। Typhoid में दालचीनी का चूर्ण 1 g + शहद 2 च. Malaria में तुलसीपत्र + काली मिर्च दें।

संधिवात में

मेथी/सौंठ/अजवाइन का चूर्ण गरम पानी से लें साथ ही इसकी पोटली बनाकर सूखा सेकें। असगंध, शतावर चूर्ण को दूध के साथ उबालकर आमवात में तैल मालिश न करें। त्रिकड का प्रयोग लहसुन का रस + गोधृत 1-2 तो. दिन में 2-3 बार में अखरोट की गिरी बहुत महीन करके लें।

बलवर्धन/रक्तवर्धन हेतु–

नियमित छुहारे/मुनक्के/खजूर दूध में उबाल कर लें गर्मियों में चारों मगज + चिरौंजी सर्दियों में बादाम, अखरोट का प्रयोग भिगाकर, महीन पीस करके करें।

अनुपान विषय

'अनुपान' अर्थात् औषध सेवन के बाद सेवन किए जाने वाली वस्तु। इसकी निश्चिति, इस आधार पर की जाती है कि रोग किस तंत्र का है। आयुर्वेद में ज्यादातर औषधियां एक से अधिक तंत्रों पर कारगर हाती है। जिस तंत्र विशेष पर औषध का कार्य अपेक्षित होता उस अनुसार अनुपान में आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं यथा

प्रयोग

मधु का कार्य मुख्यतः फुफ्फुस तंत्र

धृत का कार्य मुख्यतः स्नायु तंत्र

मक्खन/मलाई का कार्य मुख्यतः मज्जा व वसा तंत्र

दूध का कार्य मुख्यतः रस तंत्र

पर कार्य करने वाली औषधियों के साथ किया जाता है।

कोष्ण जल विशेषकर स्नेहपान के बाद का अनुपान है तथा किसी अन्य विशिष्ट अनुपान के अभाव में हरेक औषध के साथ लिया जा सकता है।

ज्वर में तुलसी वंत्रों का रस, शहद, अदरक रस अतिसार में मट्ठा/चावल का धोवन अजीर्ण में हींग, सेंधानमक युक्त छाछ, पुदीने का रस, अजवाइन का फाण्ट उन्माद/अपस्मार में धृत या ब्राह्मी स्वरस

शोध में गोमूत्र

शीतपित्त में अदरक का रस

नेत्ररात में घी

प्रदर में चावल का धोवन, प्याज का रस, आंवले का मुरब्बा

अम्लपित्त में अनार व मिश्री, द्राक्षावलेह

पंचकर्म

'पंचकर्म' आयुर्वेद की विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है जिसमें कि शरीर के दोषों का शोधन करा जाता है, जिससे शरीर शुद्ध हो जाता है तथा शरीर की कोशिकाओं रस रसायनों का नवीनीकरण होकर शरीर का दृढ़ीकरण, पुनर्जीवन होता है तथा रोग का अपुर्नभक्त के chances बढ़ जाते हैं।

पंचकर्म
- पूर्वकर्म
- प्रधानकर्म
- पश्चात् कर्म

पूर्वकर्म– इसमें शरीर को मुख्य कर्म हेतु तैयार किया जाता है।

स्नेहन (बाह्य प्रयोग में अभ्यंग, कर्णपूरण, शिरोधारा नेत्रतर्पण, कटि पृष्ठ ग्रीवा बस्ति तथा अतः स्नेहपान) के द्वारा दोषों को स्नेह में घोला जाता है। स्वेदन (आवश्कतानुसार 13 प्रकार के स्नेह) द्वारा दोषों को शिथिल किया जाता है।

इस प्रकार दोष अपने स्थान से बाहर निकलने हेतु तैयार हो जाते हैं कई तरह के रोगों में स्नेहन-स्वेदन मुख्य चिकित्सा क्रम की तरह उपयोगी होते हैं। जैसे– वातरोग, गुल्म आदि में।

प्रधान कर्म– यह मुख्यतः 5 हैं। यह सभी तीनों दोष वात, पित्त, कफ सभी पर कार्य करते हैं, परंतु इनके मुख्य कार्यक्षेत्र कुछ अलग हैं–

1. **वमन**– कफ दोष पर प्रधानतः कार्य करता है वामकौषधियों के प्रयोग द्वारा अमावशय तथा ऊपरी अंगों के दोषों का निर्हरण किया जाता है।

2. **विरेचन**– पित्त प्रधान दोषहर, अमाशय से विरेचनौषधियों के प्रयाग द्वारा पच्यमानाशय से तक के दोषों का विशेषतः निर्हरण होता है।

3. **नस्ति**– वात प्रधान दोषहर। पक्वाशय से दोष निर्हरण। 2 प्रकार की बस्ति मुख्यतः **अनुवासन**– औषध सिद्ध तैल की बस्ति देना। **आस्थापन**– औषधियों के क्वाथ की बस्ति को आधी चिकित्सा कहा गया है।

4. **नस्य**– नासामार्ग को मस्तिष्क अर्थात् समग्र उर्ध्वजत्रुगत अवयवों

औषध (स्वरस, चूर्ण, तैल या धृत) पहुंचाने का श्रेष्ठ मार्ग है। इससे त्वरित परिणाम मिलते हैं।

5. **रक्तमो क्षण**– जलौका घटी, अनाबु आदि शस्त्रों से दूषित रक्त को शरीर से बाहर निकालना, रक्तमोक्षण है।

पश्चात कर्म

पंचकर्म के बाद शरीर अत्यंत संवेदनशील, पाचन शक्ति कुछ क्षीण हो जाती है। इस हेतु जितने दिन पंचकर्म होता है उससे दुगुने दिन आहार विहार का पथ्य अपथ्य को पालन करें।

स्वस्थ रहने हेतु

वमन	वसंत हेतु
विघत	शरद
वस्ति	प्रावह ऋतु में नियमित करें

रोगानुसार, विशिष्ट पंचकर्म होते हैं।

स्त्री शरीर का स्वास्थ्य

स्त्री शरीर की सारी विशेषताएं इस हेतु हैं कि उसमें नवीन शरीर तैयार होना होता है किंतु इस हेतु बाल्य, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ व वृद्धावस्था तथा गर्भधारण के दौरान तथा इसके पूर्व व पश्चात् विशिष्ट बातों का ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा स्त्रियां कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाती है।

'रजोदर्शन' स्त्री शरीर की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो इस बात का प्रतीक है कि स्त्री शरीर का प्रजनन तंत्र अब गर्भधारण के लिए तैयार होना प्रारंभ हो गया। 'रजोदर्शन' प्रायः 12-14 वर्ष में हो जाता है। ठंडे प्रदेशों, कुज् प्रवृति की बालाओं में यह कुछ विलंब से हो सकता है। किंतु यदि इसमें अत्यधिक विलंब हो तो चिकित्सक से संपर्क करने के पूर्व कुछ साधारण उपाय करके देखे जा सकते हैं–

पुदीने के पत्तों का क्वाथ 20 ml + मिश्री

मूली के बीज 3-3 माशे सुबह शाम

कलौंजी, माशा 3 बार

अल्पार्त्तव हो तो भी उपरोक्त उपाय कारगर होते हैं।

अत्यावर्त्तव में आम/गूलर के वृक्ष की छाल का क्वाथ 4 तो. सुबह शाम

रजोदर्शन के दौरान

लघु, उष्ण आहार (कोष्ठ शोधक आहार) जैसे दूध, जौं से निर्मित आहार थोड़ी मात्रा में लें।

विषम चेष्पासों से बचना

ब्रह्मचर्य

प्रभ बातों का चिंतन

दूषित आहार-विहार से प्रदर रोग हो जाता है जो कि स्त्री शरीर को अत्यंत दुर्बल कर देता है। इसमें सम्यक् आहार-विहार करना, सरथ ही निम्न उपाय यथा मेथी को पानी में भिगोकर नित्य सेवन, चावल के धोवन में मुलेठी, मिश्री, प्याज की कतरन मिलाकर लेना।

18-21 वर्ष की उम्र तक स्त्री शरीर गर्भधारण हेतु तैयार हो जाता है। यदि गर्भधारण नहीं हो तो स्त्री के सामान्य स्वास्थ्य के सुधार हेतु प्रयास करते हुए शिवलिंगी अवश्गंधा, पुत्रजीवक, बला लक्ष्मणा आदि का गाय के दूध में पाक बनाकर ऋतुस्नान के बाद 3 दिन लें।

गर्भावस्था के दौरान आहार-विहार की चर्चा खंड-II में हुई है। यदि गर्भपात की संभावना हो

तेजपत्र चूर्ण पताशा सुबह-शाम

मुलेठी, सिंघाड़ा, केसर, कमल केसर, मिश्री का महीन चूर्ण करके गाय के गर्म दूध के साथ

गर्भिणी के ज्वर में सौंठ गर्म दूध है।

Morning sickness में दालचीनी

तैल 3 बूंद + मिश्री

लौंग चूर्ण 1 रती + शहद।

गर्भावस्था के 25वें सप्ताह से यह देखने में आता है कि Fetal pulse ध्वनि सुनकर कुछ बढऋ जाती है। There is evidence that fetal activity may be responsive to mabernal emtions, as a result of placenbal transfer of epinephrine & other hormones. So mother should herself hear pleasants meaningful, melodius sounds and should talk &

give positive suggestions to her fetns. This will ensure positive physical, mental growth of fetus. The last 3 yrs of postnatal life are most crucial for brain development and also vulnerable to effects of nutitional deficiencies should be accorded special affection. For this dict rich in aminoacts, onega-6 fatty acids, sproubled glain as lentisls, leguner, peanuts, almonds deep coloured fruits & vegetables lying an left side is advisable to prevent undue increase in BP. Undue stresses of any land should be avoided as stress increases the levels of agloup of hormones which can constrict blood flow to placenta, so the fetus may not receive the nutrients 8 oxygen it needs for optimal growth.These hormones also play a role in trigerring labour pre-term.

During 8th & 9th month, there should be great emotional excitements & upsurges.

In 5th month, jivan enters the physical vehicle being prepared. Now the mother has to nourish. The child not only physically but also spiritually. One of the masterbants and dominant factors in baby's uterine environment is, the reassuring rhythm of the mothers heartbeat. So, mother's heartbeat should be rhythmic which is possible only when mother is bhathy relaxed. There is importance of blessing and gracing the febus.

स्तन की कमी में शतावर, मेथी, चिरोंजी, चंद्रश्कर आदि का प्रयोग लाभप्रद है। गर्भावस्था तथा स्तनपान कराते समय स्त्री को calcium आदि minerals की extra आवश्यकता होती है। इसकी सही पूर्ति नहीं करने पर संधिवात आदि रोग जड़ पकड़ लेते हैं। आसान प्रसव हेतु सुख प्रसवद धृत का प्रयोग 8वें माह से करें।

प्रसवोत्तर रक्तस्राव हो तो मेथी के लड्डू नियमित लें।

45-50 वर्ष के मास-पास सामान्यतः menopausal syndrome के लक्षण प्रकट होते हैं। इस अवस्था में सोआ, पान के पत्तों का प्रयोग, ब्राह्मी, अश्वगंधा आदि का संतुलित प्रयोग। नित्य अभ्यंग अत्यंत आवश्यक होता है।

गर्भावस्था के दौरान योगासन-प्राणायाम

गर्भावस्था के दौरान नियमित रूप से कुछ चुनिंदा आसन-प्रणायाम करने से गर्भावस्था के दौरान तनाव तथा उससे होने वाले कई शारीरिक-मानसिक रोगों से बचत हो जाती है, गर्भ का विकास ठीक प्रकार से होता है, प्रसव प्राकृतिक ढंग से होने में मदद होती है।

प्रणायाम– deep yogic breathing भ्रामरी, नाड़ी शोधन, शीतली, शीतकारी।

योगासन– स्थिति व शिथिलीकरण व्यायाम जैसे ताड़ासन, डंडासन, पवन मुक्तासन, अर्ध कटिचक्रासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, बद्ध कोणासन, उपविष्ट कोणासन, मलासन, वज्रासन शशांकासन, मत्स्य क्रीड़ासन।

गर्भावस्था के दौरान निम्न गर्भविनाशक भावों का त्याग करना आवश्यक होता है–

विषम, कठिन आसन पर देर तक नैष्ना, दारूण, अनुचित व्यायाम मूत्र, पुरीष, वात के वेगों को उचित समय पर त्याग नहीं करना। तीक्षण, उष्ण पदार्थों का सेवन अत्यंत अल्प मात्रा में भोजन करना, रात्रि में अकेले घूमना बच्चे में अपस्मार चित्त होकर सोने पर card around neck होने की संभावना।

बहुत अधिक अत्यंतस्थूल, प्रमेह मुक्त

अम्ल मधुर रस का सेवन रक्तपित्त

लवण रस वली, पलित,स्वालित्य

तिक्तरस शोष युक्त, कृश संतान

कटु दुर्बल, अल्पशुक्र वाले कषाय आनाह, उदावर्त रोग से ग्रस्त बालक को जन्म देती है।

गर्भाधान के 1 माह पूर्व से स्त्री-पुरुष दोनों को ही शु. शुक्र व अर्तव तथा गभाशय का क्षेत्र प्राप्त करने हेतु–

स्नेह स्वेदन कर वमन, विरेचन, आस्थापन व अनुवासन वस्तियों द्वारा शरीर शुद्ध कर लेना चाहिए। साथ ही ब्रह्मचर्य का पालन 1 माह तक करें।

पुरुष को मुलेठी आदि मधुर औषध 7 द्रव्यों से सिद्ध दूध घी तथा स्त्री को तैल-उड़द आदि आग्न्येय गुण प्रधान आहार का सेवन करें।

बालकों का स्वास्थ्य व बाल रोग चिकित्सा

नवजात शिशु की परिचर्या में तत्परता अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा कुछ seconds की देरी भी घातक सिद्ध हो सकती है। जन्म से लेकर 5 वर्ष बालक के स्वास्थ्य की नींव डालते हैं।

शिशु आहार की विस्तृत चर्चा स्वेद में हुई। आहार के साथ-2 शिशु की नियमित मालिश (गर्मियों में नारियल तैल मक्खन, धृत से) सर्दियों में सरसों तिल तैल से करके उबटन अत्यंत आवश्यक है।

जन्म के बाद से ही नित्यप्रति सूर्य की पहली किरणें 10-15 min के लिए दिखाएं, से इससे physiological jaundice बढ़ नहीं पाती।

सामान्यतः बालक 24 घंटे के अंदर प्रथम मूल-भूत का त्याग कर देते हैं यदि कोई रुकावट हो, तो उचित परामर्श लें।

स्तनपान– बालक के जन्म के 1 घंटे के अंदर ही स्तनपान प्रारंभ कर देता उत्तम रहता है। हर 2-2 घंटे में या शिशु की भूत्र के अनुसार दूध दें। हर बार दूध पिलाने के बाद बालक की पीठ थपथपाएं। माताएं भोजन के तुरंत बाद पानी नहीं लें। इससे बच्चों को अफारा नहीं होता। रात्रि मध्य में यथासंभव दुग्धपान न करें। यदि माता का दूध कुछ कम हो या माता thyroid/physchaitric drugs आदि लेती हो तो substitute में गाय का दूध पानी मिलाकर दें।

शिशु को यदि कोई रोग हो तो पहले माता को औषधि दें। माता के दूध से वह औषधि बालक को मिलती है। माता को स्तम्य दूषित/कमन हो, इस हेतु दूध में 10-12 मुनक्के श्वेत जीरा, शतावर को पकाकार सेवन कराएं।

प्रकृति अनुरूप जीवन जीने से बालकों के स्वास्थ्य की रक्षा प्रकृति स्वयं कर लेती है। बालकों को हर समय गोद में न रखकर नीचे लिटा कर खेलने दें। हाथ-पैर चलाने से उनकी मांसपेशियों का सम्यक् विकास होता है।

दूध/अन्य भोज्य पदार्थ बहुत गरम/बहुत ठंडा न हो। दूध पीने/खाने के बाद तुरंत न नहलाएं।

अधिक बालकाल से ही बच्चों के सोने-जागने, मल-मूत्र त्याग करने, भोजन, दूध पान का एक routine बनाने से कई रोग टल जाते हैं।

बच्चों का पाचन ठीक बना रहे तथा immunity power अच्छी रहे, इस हेतु पूर्व वर्णित घुट्टी तथा बादाम (भिगाकर घिस कर) रोज दें।

अजीर्ण (बार-2 वमन, दस्त)

बड़ी हरड, सेंधा नमक (बराबर)

1-2 रत्ती 3-4 बार पिलाने से

पेट पर हिंग का लेप

दूध में सौंफ उबालकर छानकर पिलाएं। उल्टी में आराम मिलता है।

दस्त होने पर छुहारे की गुठली को पानी में पीसकर चटाएं। अजवाइन काढ़ा दें

कब्ज में 1 छुहारा (बीज निकालकर) पानी में भिगाकर 2-3 बार में दें। भिगी किशमिश गुलकंद, मुनक्के भी अच्छा असर करती है।

कृमि होने पर विडंग चूर्ण शहद/प्याज रस

दांत निकलने के समय मसूड़ों में मुलेठी। टंकण भस्म शहद से मालिश करें।

ज्वर में सौंठ क्वाथ से शरीर पोछना, बालचतुभद्र चूर्ण + शहद

कास में टंकण भस्म + शहद/भुनी लौंग + शहद तुलसी अदरक + पान का रस + शहद।

बेवजह अधिक रोने पर त्रिफला + पीपर का चूर्ण + शहद/घी।

त्वक् रोग में नीम छाल को घिसकर लगाएं।

शफामूत्र में भिगे मुनक्के (5-10) किशमिश + 1 अखरोट दें।

धनिया का पानी + मिश्री दें।

उपरोक्त समस्त सावधानियों के साथ-2 यह भी अत्यंत आवश्यक है कि सभी परिवार जनों व माता के मनोभाव व आचरण, आहार-विहार सम्यक् रें, इससे बालक का शारीरिक-मानसिक विकास भलीभांति होता है।

विष चिकित्सा

सर्प विष

जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो उसके 4 अंगुल उपर tighgtly tormniquet बांध दें। हल्का चीरा लगाकर या हल्का अग्नि कर्म करके Potassium permagnet भर दें। तंबाकू पत्रों को पानी में पीसकर लेप करें।

वमन, बस्ति करें, मिट्टी में शरीर को डूबो दें।

घी पीलाएं।

काली मिर्च का धुंआ

काली मिर्च वन तुलसी, नीम की गुठली की गिरी, भुनी हिंग, सुहागा बराबर लेकर गोली बनाकर ½7-½ घंटे पर घी शहद से दें।

बिच्छु के विष

काली तुलसी, इंद्रयाण, वौसाहर लमालगो को पीस कर काटे स्थान पर लेप सफेद जीरा + शहद (नमक)।

मकड़ी का विष

अमचूर + पानी का लेप।

बर्र/ततैया काटने पर

तुलसी पत्र + नमक रगड़ें तुलसी चबाकर खाएं। प्याज/लहसुन का लेप स्वभूत प्रयोग।

कुत्ते के काटने पर

घाव को साफ कर नीम पत्र + लाल मिर्च बांध धत्तूर बीज 1 रत्ती दही दें।

बिल्ली/चूहे के काटने पर

पुदीने पत्र का लेप + सेवन।

किसी भी प्रकार के विष पान में–

वमन/बस्ति करें।

धृत + दुग्धपान

मिट्टी का प्रयोग

बिल्वादि मुरिका

आकस्मिक चिकित्सा

दग्ध व्रण

अधिक जल जाने पर तुरंत Hospitalised करना चाहिए। उपरी दग्ध होने पर।

कच्चा आलू पीस कर

अजवाइन बारीक पीसकर, अलसी के तेल के साथ

धृत कुमारी का गूदा।

बिजली का झटका

Cardiac Massage दें।

हाथ-पैर के तलवों की massage

बताशे में कपूर 1 रत्ती डालकर व्यक्ति को खिलाएं।

Ammonia को cotton में लगाकर सुंघाना।

मोच आने पर

इमली के गुनगुने पानी में प्रभावित अंग की सिकाई।

प्याज, लहसुन, पीसकर चूना, हल्दी, शहद मिलाकर गरम-2 लेप/पुल्टिस।

तेज दर्द होने पर

मैथी 1 तो. + अजवाइन ½ तो. सौंठ ½ तो. गरम पानी से।

गरम दूध + हल्दी।

घाव होने पर

घाव को नीम पत्र के काढ़े या नमक पानी से धोकर जत्यादि धृत लगाएं।

लू लगना

मुंह में बर्फ का छोटा टुकड़ा डालना

खस + चंदन का शर्बत

प्याज का रस

कच्चे आम का पना

अधिक रक्तस्राव होने पर

उस स्थान पर हल्दी व फिटकरी का चूर्ण डालें।

Practicals

1. Prakriti assessment
2. Introduction of few important medicinal plants
3. Method of preparation of some of the drugs in combination. (Panchavidha Kashaya Kalpana)
4. To prepare one's own diet chart and chart for lifestyle activities according to various factors as age, sex, occupation, prakriti.
5. Examining Rog Rogi.
6. Yogasanas, Pranayam.
7. First Aid T/ts

रोगों की उत्पत्ति

पंचकोष

कोष से तात्पर्य सम्पन्नता से है। आशय तथा प्रयोजन सहित निश्चित क्रिया करने वाले अंग विशेष (अर्थात् परमाणु अंशों) को कोष की संज्ञा है।

जागृत मानव में पांच कोषों का गठन है। इन पांचों कोषों की क्रियाशीलता व अभिव्यक्ति चैतन्य इकाई (जीवन परमाणु) में है। यह पांच कोष हैं–

अन्नमय कोष	ग्रहण विसर्जन करने वाले अंग
प्राणमय	प्रेरणा को स्वीकार या अस्वीकार करने वाले अंग
मनोमय	चयन करने वाले अंग
आनंदमय	सुख या दुःख को व्यक्त करने वाले अंग
विज्ञानमय	विशेष ज्ञान को ग्रहण करने वाले अंग की विज्ञानमय कोष संज्ञा है।

जड़ संसार में केवल अन्नमय, प्राणमय, मनोमय कोष स्पष्ट अथवा प्रमाणित होते हैं। कोष गठन भेद से सृष्टि में अवस्था भेद पाया जाता है। पदार्थावस्था की सृष्टि में अन्नमय + प्राणमय प्राणावस्था की सृष्टि में इनके अतिरिक्त मनोमय कोष स्पष्ट होता है। वनस्पतियों, जीव मानव शरीर में चयनवादी क्रिया विशेष है।

जीवावस्था व ज्ञानावस्था के जीवन परमाणु में चार कोषों की क्रिया स्पष्ट है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, आनंदमय कोष।

आनन्दमय कोष का विकास ही चैतन्यता का कारण है तथा इसी चैतन्यता के कारण जीवावस्था में सुख व दुख का प्रकाशन है। इसके कारण ही जीवावस्था की इकाई को विषयों(आहारनिद्रा, भय व मैथुन) का सेवन प्रियाप्रिय, हिताहित तथा लाभालाभ की दृष्टि से करने का अधिकार है।

जाग्रत मानव में इनके अतिरिक्त 'विज्ञानमय कोष' जागृत होता है तथा इस कोष के जागृत होने से ज्ञान, विज्ञान व विवेक जागृत होता है। इसके द्वारा ही दुख के कारण व निवारण की समझ विकसित होती है तािा दुख के निवारण से ही सुख, शांति, संतोष व आनंद की अनुभूति संभव है।

In vestigations ijnto these unknownregions of human existence started unravelling existence beyond the physical body. Kirtian photography and scientic tudy of human Auraby Prof. Tart delinates te Pancha Koal Five layered existence of human being.

In reference to human being, in Annamaya Kosa, the atoms congtomerate together to form Various chemicals. Our body is a permutation and combination of various chemicals. They jointo together to form molecules, cells, tissues, organs. They follows well defined law of nature and are fontrolled by nervous and hormone mechanisms to bring about movement & action in each and every cell. Energies like electricity, sound, lights radio, X-ray are related to annamaya Kosa as they are bound by energy laws. Prana is subtler than that.

Prana is the like energy. Its uniform harmonious flow to each and every cell keeps them alive and healthy. Prana flows through subtle channels called Nadis. Prana has the capacity to move into different areas of body as per requirement. the five dimension of this mukhya Prana flow resulting in activities in these areas are called Pancha Prana(Prana, Vdana, vyana, samara, Apana). A balance between all these 5 prana is health and imbalance is disease.

भ्रमित मानव में विज्ञानमय कोष जागृत नहीं होने के कारण संयम भी प्रमाणित नहीं होता तथा जीवन स्वयं को शरीर मानकर संवेदनाओं सुखी होने के लिए अनेक कार्यक्रम करता है। यह संवेदनाएं चाहे शरीर के लिए हितकर हो या अहितकर, मनुष्य इनसे रसास्वादनकरने के प्रयास में लगा रहता है, इससे बहुत strong likes/disliks बन जाती है। सह-अस्तित्व के

अनुभव, व्यवस्था के सम्यक् ज्ञान के अभाव में मानस तीन प्रमुख कारणों से रूग्ण होता है।

1. असात्मेन्द्रिार्थ संयोग–पंच ज्ञानेन्द्रियों का अपने विषयों का अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग, उदा, त्वगिन्द्रिय के अतियोग में अत्यंत शीतल या अत्यंत उष्ण पदार्थों का स्नान, अभ्यंग, उत्सादन आदि में अधिक सेवन

सर्वथा स्नान नहीं करना, अयोग है। अपवित्र पदार्थों का स्पर्श, शीत व उष्ण स्पर्श वाले पदार्थों का क्रमपूर्वक सेवन न करना, यह मिथ्यायोग है।

2. प्रज्ञापराध–कर्म (वाणी, मन व शरीर की चेष्टाओं की संज्ञा) का अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग।

3. काल(ऋतु) का अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग–जब मानव अज्ञानतावश, प्रकृति के साथ अपने संबंधों का ठीक-2 निर्वाह नहीं करता, तो छह ऋतुओं का संतुलन बिगड़ जाता है, जो शरीर में अनेक रोग उत्पन्न करता है तथा वनस्पतियों में भी रसादि गुण पूर्ण नहीं होते, जिससे कुपोषण रहता है इस प्रकार समाधान के अभाव में असंयमपूर्वक मानव अहितकर आहार-विहार, कर्म-भ्रमित चित्रण-विश्लेषण-चयन करता हुआ अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। जब, जीवन में संतुलन नहीं होता तो प्राण में भी असंतुलन हो जाता है तथा नाड़ियों में प्राणप्रवाह बिना किसी rhythm व Harmony के, अनुचित मार्गो में बहने लगता हैं, इससे नाड़ियों में भी स्थिरता नहीं रहती। इस कारण ग्रहण किए हुए आहार का सम्यक् पाचन भी नहीं हो पाता क्योंकि नाड़ी तंत्र के प्रभाव से ही सही समय में सही मात्रा में सम्यक् पाचक रस स्त्रावित होते हैं। इस कारण अपक्व रस (आम) शरीर-मानस रोग उत्पन्न करते हैं।

आज के युग में समस्त रोगों का प्रधान हेतु 'तनाव' अर्थात् 'stress' सिद्व हो रहा है।

तनाव = असंतुलन (शरीर व जीवन दोनों स्तरों पर)

सह-अस्तित्व के अनुभव होकर व्यवस्था का बोध हो जाने पर मानव न्याय, धर्म, सत्य को प्रमाणित करते हुए पूर्ण स्वस्थ होकर जीवन सार्थक कर पाता है।

किंतु भ्रमित अवस्था में मानव मुख्यतः रूचिमूलक आस्वादनों तथा प्रिय

वस्तुओं को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा तथा अप्रिय वस्तुओं/स्थितियों से बचने का पूरा प्रयास करता है। जब वह प्रिय वस्तु/स्थिति को प्राप्त कर पाता है तो वह स्वयं को सुखी पाता है, अन्यथा दुखी। ज्यादातर, दूसरा पक्ष ही देखने में आता है।

स्वयं के परिवार की आवश्यकता को ठीक-ठीक समझ नहीं पाने के कारण मानव समस्त अर्थ (तन, मन, धन) सुविधा के संग्रह में लगाता हुआ भोग, अतिभोग, बहुभोग में संलग्न होकर शरीर व मन से बहुत अधिक कार्य लेने के लिए जब अत्यधिक व निरंतर दवाब डालने लगता है, तो एक सीमा के बाद शरीर व मन का Breakdown हो जाता है, इससे ही अनेक acute/ chronic psychosomatic diseases उत्पन्न होती है।

As per modern science, stress is studied and understood at physical body level as an imbalance of theneuro-endocrinee systems neurotransmitter level stress B Dishormony at any level.

These stress is the reaction to a demanding situation in human physiology. stress can occur at two levels-

1. **Physical stress-** like accidents, burns major surgeries, infection.
2. **Psychological-**Fear,anxiety,worry, jealousy, anger excitement, emotional, conflicts.

These stress may be temporary or a deep-seated, long standing one. the activity in the mind is so much and so fast that the system is not able to cope with it. This speed has also made man emotionally hypersensitive. Small things can upset a person psychologically and emotionally to such a extent that it may lead to disasters.

In event of such stressful situation some unique set of changes result in our body physiology in order to help him cope in the best possible way by making the required internal adjustments.

The pupils of the eyes dilate both lids wide open resulting in having the widest visuall field.

The muscles get toned up to contract in the most powerful & co-ordinated way which demands increased energy expenditure. This is supplied by dilated blood vessels and blood glucose level rises. For this, heart pumps the blood faster with higher blood pressure etc.

All these changes are restoredto normally once the person is out of danger.

But if this situations are repeated frequently, ultimated physical-mental breakdown oceues.

All these changes are under control of two major systems-

1.Autonomic nervous system.
2. Indocrine system.

1. Autonomic nervous system.

controls all involuntary puriction of body.

2. major subdivisions.

Sympathetic		**Parasympathetic**
— It sympathises with person to help him to cape with stress by begining about stress reactions — Has highest cenble (hypothelaomus) in centre of brain. — Large number of nerve stress proceed at all levels segmentally from nucler arranged on either side of spinal cord whenever there is any form of stress hypothalamous is exicted which in turn sends electric impulses through sympathetic nerves which activate runction of various organs like vearyblood vessels, sweat glands.		Its stimulation helps sympathic nervous system in stress adaption. Mainly snarl vagus, largest nerve with its centre in brains bem. It edescentre down neck chest, abdomen inner vating all organs.
Heartbrake	yes	yes
Blood pressure	yes	normal
Blood glucose	yes	normal
muscle bone	yes	increases
secreption of digestions	yes	

2. Indocrine system-to stics ster by Adrenal gland (locate) just above kidneys, thyroxine by thyroid, gland, growth hormones

secreted by pibutory are chief hormones that assist in stess adaptation. And, their secretions are chaeiply under control of hypothalamer (which also nontrols Ans)

Physical stress releases greater quantities of nor-adrenaline while emotional stress released mor of adrenaline.

Four distinct stages in development of stress disorders can be recognised-

1. **Psychic phase**

The person feels most of the psychological changes as a result of lack of true knowledge and hence excessive psychic trauma. Person is irritable, feels fear, worries, insecurity.

2. **Psychosomatic**

Certain Generalized changes in body are also noticeable as hypertension, tremors, palpitation, Insomnia.

3. **Somatic**

Target organs are affected and hence, these are specific symptoms also as hyperthyroidism, Hyperinsaliemia. The stress disease usualy7 sebbles in an organ depending upon the individual's own tendency, hereditary background and also on the environmental factors.

4. **Organic Phase**

Gradually, the lesion settles down in the target organ with full-pledged changes. as coronary insufficiency, IHD, thyrotoxicsis, bronichial, asthma or peptic ulcers.

In first two stages, there is an increased anxiety scores and red blood acetyloholine Casti. In lates two stages, in addition red blood catecholamines, histamiser is seen.

Some examples of proven psychosomatic diseases are -Chronic hypertension &resultant atherosclerosis- Due to high tends of stress, blood vessels have to work more and they age earlier, get hardened. In take of very rich food in absence of physical exercises lead to the condition.

diabetes-

Repeated upsurges onceyears due to repeated synpathetic stimulations result in constantly elevated blood sugar.

Hyperacidity & Peotic Ulcers-

stress can evoke too much acid secretion which can damage the lining leading to peptic ulcer in stomach or in dusdenal glucey.

Colitis/Irritable bowel syndrome

Large brucl is very sensitive to nervous excatations. In persons with too much of emotional suppressions, this problem crops up.

Migrans/Tension Headache-

In persons with dominant personalities, spasm of blood vessels. Supplying to scalp and brain results in this.

Allergy-

i.e. hypersensitivity reaction to things that one may touch, inhaled ingest.

Persons who can not show their highly sensitive emotions. These suppressed emotions could manifest themselves inform of various **allergis-**

In skin as eczema, in upper respiratory efact as sneezing, blocking or running of nose.

Thyrotoxicosis-

If manifests itself during the stress of adaptation to puberty. Pregnancy, menopause, surgery or even the emotional coflicts like disappointment in love, loss of aspause.

Auto-immune disorders

These are conditions under which the body starts reacting towards its own tissues as if they were foreign. Stress is clearly know to exaggerate these condition.

The systems which get mostly effected by stress are-

Cardiovascular

During rage, cloggy time of blood is markedly shortened. During anger regret, resentment, anxiety pulse safe, B.P. cardiac output all increase.

Psychogenic faint initiated by emotional factors as fear, sudden unpleasent or situations is associated with parasympethetic over activity resulty in vasolation & fall of circulatory blood volume.

G I tract-

Secretion of digestive juices is greatly influend by anger, joy, **anxiety**

Fear, anxiety, pain are known to cause an increasein peristalsis

with reddening & smelling of mucous membrane while depression causes reduced moblity and pallor of mucous membrane.

Skin

Emogions are most commonly & immediately expressed through skin. Itching can purely be Psychogenic. Emotional sweating is most evidention palms, soles and in axila. Long germ eczema, psoriasis etc area.

Respiratory system

The emotional Radous mosts likely to precipitabe para-sympathetic effects of thickened mucous membrane with watery secretion are feelings of humilition and resentment. Asthma is usually a disorder of multiple causation on which emotional factors has a major role to play in addition to infection ablergy, beraity of all phase psychosomatic changes, best, judge is the parties himself who suffers the pain. But to measure emotions, psychologists look at physiological changes in the body that are readily measurable. These normally include heartrate, B.P., Breaking rabe, skin cenductance, EEG. Fast EEG are characteristics of an emtional stake.

The electrical conductance of the skin, commonly called the Galvanic skin response (Gsre) offers an indication of emotional feeling specially anexity. An elevated level of blood acebyleholine is an early feature of almost all thses stress related disorder. Following stress release of catecholamines are mainly responsible for producine some of man bronchial and other pathological changes.

The visceral reactions of emotional stimuli are of two types.

1. **Sympathic—** It adjusts the body to such bresses therefore inhibits metabolic processes of body, measure heart rate BP.

Its effects are metiated through Adrenative (Body's emergency hormone it measures heart rates B.P. Carbohydrate abilization. Its aiching Adelaline is relased in pain to emotional stimuli & Noradlenaline has powerful vascocmerictor effect on all so measures B.P.

2. Parasympathetic— It is concerned with canservation &

anabotic procestes of body. Its effects are mediated through Acetylcholic.

It stimulates GI & bronchial searches, strong of sugar on liver protective reflexes.

जब तक जीवन स्वचं को शरीर मान कर जीता है तब तक लाभ हरेक रोग शरीर व मन दोनों को प्रभावित करता है।

शरीर को पहले प्रभावित करने वाले शारीरिक रोग भी मन को प्रभावित करते हैं जैसे– DElirium of acute fever, Depression of influenza, irritability of convalescent etc.

Management of Psychosomatic Disorders

मानव के लिए अस्तित्व सहज स्थिति है जागृति (दिव्य मानव पद) जागृति के बाद मानव संयम पूर्वक स्वस्थ रह पाता है।

मानव को इस बात की ओर ध्यान दिलाना होगा कि जाने/अनजाने उसने स्वयं को रोगी होने में सहयोग किया है अतः स्वास्थ्य लाभ करना भी उसकी ही जिम्मेदारी है। चिकित्सक, इस कार्य में मद ही कर सकते हैं।

स्वस्थ वृत्त व सद्वृत्त का पालन करते हुए शरीर व मन को स्वस्थ रखा जा सकता है।

कुछ चुने हुए प्राणायाम व योगासनों को नियमित रूप से करने पर शरीर की क्रियाएं सटीकता से चलती हैं। व बहुत अधिक तीव्रता से न बहुत मंद गति से क्रियाएं स्वस्थप्रद होती हैं।

योग निद्रा, शशांकासन, उष्ट्रासन आदि एक साथ उचित अनुपात में किए जाने पर उचित stimulation व relaxation दोनों करते रहते हैं।

पथ्य-अपथ्या द्रव्य

कुछ द्रव्य प्रकृति से हितकर होते हैं, जिनका किसी भी अवस्था (स्वस्थ अथवा रूग्ण) अवस्था में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे ही कुछ द्रव्य प्रकृति से ही अहितकर होते हैं।

आहार द्रव्य	हिततम	अहिततम
शूकधान्य	लोहिशालि	यवक
शमीधान्य	मूंग	उड़द
लवण	सैंधव	ऊषर
पत्रशाक	जीवंती	सर्षप (सरसों)
दूध/धृत	गोदुग्ध/धृत	मेषी दूध/धृत
स्थावर स्नेह	तिल तैल	कुसुम्भ तैल
कंद	आर्द्रक	आलू
फल	मृद्वीका (मुन्नका)	लकुच

पथ्य आहार-विहार का महत्व चिकित्सा विज्ञान में औषध के बराबर या कुछ ज्यादा है। ऐसा कहा जाता है यदि रोगी पथ्य से रहे तो उसे औषध सेवन की क्या आवश्यकता और यदि पथ्य सेवन न करे तो फिर केवल औषध उसकी रोग निवारण कैसे करेगी? कई प्रारंभिक अवस्था के रोग पथ्य आहार-विहार से ही ठीक हो जाते हैं।

कुद सामान्य पथ्य

पुराने चावल के भात, पुराने जौ का दलिया/सत्तू मूंग की पतली दाल, गोदुग्ध/पतली छाछ, ¼ या 1/8 उबाला हुआ जल धनिया, जीरा सौंफ, तेजपत्र एकत्र कर भूनकर, कूटकर रखकर हर सब्जी/दाल में प्रयोग किया जा सकता है। सब्जियों में परवल, तुरई, कच्चा केला, लौकी, पेठा, सूरण, गाजर, पुनर्नवा, लोबिया, सोआ, बथुआ, फलों में मीठा अनार, मौसंबी, सेव आदि।

इसके अतिरिक्त विशिष्ट रोग व अवस्था के अनुसार, विशिष्ट पथ्यापथ्य होते हैं जैसे

अतिसार में पुराने चावलों का भात, छाछ, पका केला आदि दें। इसमें आटा, मैदा, खोया आदि गरिष्ठ चीजें न दें।

जबकि क्षयरोग में तथा प्रसूता स्त्री को गेहूं के आटे का घी डालकर बनाया हुआ हलवा लाभप्रद होता है।

केवल दूध का पथ्य कई रोगों में जैसे जीर्णज्वर, अपस्मार, उन्माद, जलोदर, विषरोग, हृद्रोग, डर क्षत, अम्लपित्त कारगर होता है।

छाछ का प्रयोग अग्निमांध, हर्दि, अर्श, ग्रहणी, मूत्रकच्छ, प्रमेह अतिसार, श्वित्र, कृमि में अत्यंत उपयोगी।